योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योग योगेश्वर अनन्तश्री बन्दगोहन जी महाराज

वर्ष : 29 अक्टूबर 1996 अंक : 7

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई, आगरा

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेश चन्द्र शर्मा

अक्टूबर १९९६

इस अंक में पढ़िए

❀ न पतन्ति कृतान्तमुखे १

❀ योगी की अचिन्त्य शक्ति (विशेष लेख) २
—योगीराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ श्री रामचरित मानस में योग ७
—श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

❀ सद्गुरुदेव योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज का पावन जन्म-दिवस (सम्पादकीय) १०

❀ पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः (कविता) १२
—श्री द्वारका प्रसाद शर्मा

❀ गुरु कुम्हार—शिष्य कुम्भ १५
—श्रीमति कविता शर्मा

❀ आज्ञा-पालन १७
—श्री विष्णुप्रसाद व्यास

❀ सन्त चरणदास एवं पातञ्जलि योग-दर्शन १९
—श्री डा० विजयसिंह

❀ कर्त्तव्य एवं आसक्ति २२
—पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

❀ योग में शरीरस्थ शक्ति-केन्द्र सूर्यचक्र का महत्व २५
—पं० श्री भृगुनन्दन जी मिश्र

❀ अलौकिक योग दीक्षा २९
—श्री केशव उपाध्याय

❀ श्री गुरुदेव भगवान की कृपा ३५
—श्री रमाकान्त उर्फ कन्हैयालाल उपाध्याय

❀ मन ही साधन है ३९
—श्री चक्रपाणि

वार्षिक मूल्य ६० रु० । द्विवार्षिक मूल्य ११० रु० ।
इस अङ्क का मूल्य ६ रु० ।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॐ

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

का

जन्म-दिवस समारोह

अपने सभी भाई-बहनों को यह सूचित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है कि क्षण-क्षण स्मरणीय परम आराध्यदेव सद्गुरुदेव योगिराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन जन्म-दिवस समारोह आश्विन सुदी दशमी (विजय दशमी) तदनुसार २१ अक्टूबर १९९६ ई० दिन सोमवार को श्री सिद्ध गुफा सवाँई (आगरा) आश्रम पर बड़ी धूमधाम के साथ मनाना निश्चित किया गया है।

अतः समस्त गुरुभाई-बहनों से निवेदन है कि इस पावन पर्व पर आश्रम पहुंच कर अपने श्रद्धा-सुमन श्री चरणों में अर्पित करके अपना जीवन सफल बनावें। आश्रमवासी समस्त ब्रह्मचारियों का समस्त श्रद्धालुओं एवं सज्जनों से अपने इष्टमित्रों सहित सवाँई आश्रम पहुंचकर पुण्य लाभ लेने का पुनः आग्रह है।

निवेदक :

समस्त ब्रह्मचारीगण

श्री सिद्ध गुफा आश्रम ट्रस्ट

सवाँई (आगरा)

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष २९ अङ्क ७

ध्यायं ध्यायं वदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्योमृत्योर्मुं ख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः॥

अक्टूबर १९९६

न पतन्ति कृतान्तमुखे

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥

अर्थात्

ऋषियों ने आपको प्राप्ति के लिए अनेक मार्ग माने हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टि वाले हैं, वे मणिपूरक चक्र में अग्निरूप से आपकी उपासना करते हैं। अरुणवंश के ऋषि समस्त नाड़ियों के निकलने के स्थान हृदय में आपके परम सूक्ष्मस्वरूप दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं। प्रभो! हृदय से ही आपको प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्र तक गई हुई है। जो पुरुष उस ज्योतिर्मय मार्ग को प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपर की ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता।

विशेष लेख :—

★★★ योगी की अचिंत्य शक्ति ★★★

❀ योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

(गताङ्क से आगे)

इसके अतिरिक्त रामायण में श्री सीताजी द्वारा श्रीराम की बरात का अनुपम प्रबन्ध करना। जनकपुरी में भगवान श्री रामचन्द्र जी बरात के पधारने पर अपनी योग-शक्ति से सिद्धियों को लाकर जो आतिथ्य किया वह भी सीताजी की योग-शक्ति का पूर्ण परिचायक है। सीताजी ने जिस समय देखा कि बरात शहर में आ गई है और उनके प्राण-पति भगवान् श्रीराम का पूर्णरूपेण आतिथ्य नहीं हो रहा है, ऐसी स्थिति में स्वयं सीताजी ने ही मन में संकल्प करके सिद्धियों को बुलाया और उचित आतिथ्य का आदेश दिया—

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥
सिधि सब सिय आयसु, अकनि गईं जहां जनवास।
लिये सम्पदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास॥ १/३०६॥
निज-निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोई न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हेतु मरम पहिचानी॥
पितु आगमनु सुनत दोऊ भाई। हृदय न अति आनन्दु अमाई॥

अर्थात् जिस समय श्री सीताजी ने अपने शहर में आई हुई बरात को देखा तो हृदय में स्मरण करके सब सिद्धियों को बुला लिया और महाराज दशरथ के आतिथ्य सत्कार के लिये उनको प्रेरित किया। सब सिद्धियाँ सीताजी के आशीर्वाद को प्राप्त करके देवताओं के नगर में होने वाली सब प्रकार की सम्पत्ति व भोग-विलास की सामग्री को लेकर के जहाँ जनवासा था वहाँ गईं और बड़ा ही अद्भुत वैभव पलों में प्रकट कर दिया। बाराती लोग अपने आवासों को देखकर बड़े आश्चर्यचकित थे किन्तु उस सम्पत्ति के मूल कारण को कोई नहीं समझ सका। सब लोग यही समझते थे कि यह सारा ऐश्वर्य राजा जनक का ही है। किन्तु एकमात्र श्री रामचन्द्र जी ने इस बात को पहचाना—

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥

सीताजी की महिमा को केवलमात्र रघुनाथ जी ने जाना और वह अपनी शक्ति के इस अद्भुत प्रभाव को देखकर के बड़े हर्षित हुए। सीता उनकी अपनी आत्मशक्ति थी। इसी प्रकार से मुनिश्री भरत जी के भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचने पर मुनि की योग-

शक्ति के प्रभाव दिखलाने वाली अद्भुत घटना को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥ २/२१३ ॥

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥
मुनि पद बन्दि कीजिअ सोई आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे ॥
दासीं दास साज सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे ॥
सब समाज सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहु नाहीं ॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुन्दर सुखद जथा रुचि जेही ॥

बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिबर तपबल कीन्ह ॥ २/२१४ ॥

अर्थात् भरत जी श्रीराम जी को लौटाने के लिये वन में आया देख करके सेना सहित भरत जी के आतिथ्य के लिये मुनि ने अपने संकल्प से सिद्धियों को बुलाकर आज्ञा दी कि भरत जी का आतिथ्य करके इनकी रास्ते की थकान दूर करो। मुनिराज के इन वचनों को सुनकर रिद्धि-सिद्धियों ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और भी भरत के लिये हम वह काम करें जिसको देखकर देवी-देवता सभी आश्चर्य में पड़ जायें, यह विचार कर उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रहने के मकान बनाये जिनको देखकर देवता लोग भी आश्चर्यचकित रह गये। इसके अतिरिक्त उन मकानों में भोग सामिग्री को देख करके देवताओं की अभिलाषायें भी जाग उठीं। बहुत से दास-दासी बनाये जो मनुष्य को स्वप्न में भी स्वयं नहीं मिल सकता। यह सब सुख-सिद्धियों ने मुनि की आज्ञा मानकर पल में कर दिया और भरत जी व उनकी सेना के लिये उचित स्थान दिये। इस वैभव को देखकर देवी-देवता, वरुण आदि लोकपाल सब देखकर हैरान थे। यह वैभव जो मुनिराज ने अपने संकल्प से किया—

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहंगमृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥
असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें ॥

आसन, सुन्दर सेज, अच्छे-अच्छे कपड़े, ऊपर लगाने के चन्दोवे बड़े सुन्दर वन-वाटिकायें सुन्दर-सुन्दर पक्षी, मृग, बड़ा सुगन्धी वाले फूल अमृत के समान स्वादिष्ट जल वाले कुएं, तालाब आदि निर्मल जलाशय, अमृत के समान खान-पान के पदार्थ और इसके अतिरिक्त सभी डेरों में कामधेनु, कल्पवृक्ष आदि सम्पत्ति बनाई, वसन्त ऋतु का सुहावना समीर वहां चलने लगा। ये सारा का सारा प्रभाव मुनि भारद्वाज की अलौकिक योगशक्ति का

था। इसी प्रकार से हमारे पुराने इतिहास में सैकड़ों उपाख्यान इस प्रकार के हैं जिनको पढ़ करके भारतवर्ष में होने वाले पुराने योगियों की अचिन्त्य शक्ति को देखकर मन उत्साहित हो उठता है किन्तु हम अपने महापुरुषों की इस प्रकार की दिव्य घटनाओं को देखकर व सुनकर समझ भी न पाते कि ऐसा हुआ था या नहीं। यह तो बहुत पुरानी बात है अब भी भारतवर्ष में समय-समय पर इस प्रकार के महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहता है, जिन्होंने समय-समय पर अपनी योगशक्ति का परिचय दिया—

सन्त ज्ञानेश्वर

महाराष्ट्र प्रान्त में होने वाले सन्त ज्ञानेश्वर का ब्राह्मण कुल में जन्म लेने सन्यास आश्रम से बदलकर पुनः गृहस्थ में आने वाले विप्र की सन्तान थे। उनके जीवन में अलौकिक और आश्चर्यप्रद घटनाएं घटी। ज्ञानेश्वर के चरित्र की क्रम जिस समय महाराष्ट्र में चर्चा तो उनके समकालीन उसी समय में होने वाले १४०० वर्षीय योगी चांगदेव ने बड़ा आश्चर्य माना और वह शेर पर सवार होकर संत ज्ञानेश्वर से मिलने के लिये चले। उनकी बहिन मुक्ताबाई ने १४ वर्षीय अपने भाई ज्ञानेश्वर से कहा कि भाई योगी चांगदेव जहरीले सर्पों का चाबुक हाथ में लेकर और खूंखार शेर पर चढ़कर तुम से मिलने आ रहे हैं। उस समय ज्ञानेश्वर जी एक ऊँची दीवार पर बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी बहिन को आश्वासन दिया और कहा—मुक्ता चिन्ता मत कर, अपने पास शेर तो नहीं है पर हमारी यह दीवार ही उनके आतिथ्य के लिये आगे बढ़ेगी। सन्त ज्ञानेश्वर के इतना संकल्प करने पर दीवार आगे चलने लगी जिसको देखकर सभी लोगों ने बड़ा आश्चर्य माना और योगी चांगदेव के तो आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा। १४ वर्षीय बालक और १४०० वर्षीय योगिराज का अद्भुत मिलन हुआ। योगी चांगदेव ने समझ लिया कि यही मेरे गुरुदेव हो सकते हैं। और भूज पर शक्तिपात करके मेरा आत्मोत्थान करायेंगे एवं बाद में अवसर पाकर १४०० वर्षीय योगी चांगदेव ने १४ वर्षीय बालयोगी ज्ञानेश्वर की चरण शरण ग्रहण की और अपने आपको कृतार्थ किया। आजकल के इस घोर कलिकाल के समय में भी योगियों की चमत्कारिक घटनायें समय-समय पर घटित होती रहती हैं।

योगदा सोसायटी के प्रवर्तक महाशय लाहिड़ी

जेको पब्लिशिंग हाउस महात्मा गांधी रोड, बम्बई से अंग्रेजी में एक पुस्तक निकली, जिसका नाम आटोबाईओग्राफी ऑफ योगी योगानन्द कृत (Autobiography of Yogi by Yoganand ji)। इस पुस्तक को पढ़ने वाले लोग श्री महाशय लाहिड़ी की आत्मकथा को पढ़कर आश्चर्य में पड़ जायेंगे। महाशय श्यामाचरण लाहिड़ी बनारस में निवास करते थे और वे सरकारी कर्मचारी थे। एक बार उनको किसी सरकारी काम से रानीखेत जाने का अवसर प्राप्त हुआ। रानीखेत पहुँचने पर उनके मन के अन्दर धारणा बनी कि वह जंगलों का भ्रमण करें, अपनी इसी धारणा के अनुसार जिस समय वह वन में गये तो उनको एक आवाज सुनाई दी, लाहिड़ी आओ, तुम्हें गुरुदेव याद कर रहे हैं। तुम बहुत दिन के बाद आ रहे हो लगभग ३२ साल से हम तुम्हारे आसन को संभाले हुए हैं। महाशय लाहिड़ी कुछ दूर आगे बढ़े तो उनको दो तपस्वी साधु दिखलाई दिये। लाहिड़ी का

मन उन दोनों महात्माओं की ओर स्वभावतः आकर्षित हुआ जा रहा था। लाहिड़ी यह विचार कर रहे थे कि ये दोनों साधु मेरे अपने हैं, मैं इनका हूँ। उनको ऐसा आभासित हुआ कि जिस प्रकार कोई मृग अपनी मृगों की टोली से अकेला छूट जाने और बाद में इधर-उधर घूमघाम करके अपनी वह बिछुड़ी हुई टोली से मिल जाने। जो हर्ष मृग को हुआ करता है वह हर्ष महाशय श्यामाचरण लाहिड़ी में आगे बढ़कर अपने बिछुड़े जन से सुरक्षित रूप आते हुए आसन को देखा, उनको पहचान हुई कि यह आसन मेरा ही होगा। वहाँ खड़े ही गुरुदेव के दर्शन की तीव्र लालसा मन में पैदा हुई। और अपने गुरु भाइयों से कहा कि भाई मुझे गुरुदेव के दर्शन कराओ। दोनों महात्मा लाहिड़ी महाशय को एक गुफा में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पूर्व जन्म के गुरुदेव के दर्शन प्राप्त किये। गुरुदेव लाहिड़ी को देखकर हँसे और कहा कि लाहिड़ी तुम रानीखेत में स्वतन्त्रतापूर्वक होकर नहीं आये हो, प्रत्युत चार दिन के लिए तुम्हें वहाँ बुलाया गया है। अभी ४ दिन के बाद तुम्हारे ऑफीसर तुम्हें छोड़ देंगे। अब तुम दीक्षा प्राप्त करो। उस गुफा में खड़े हुए महाशय लाहिड़ी के मन में विचार घूमने लगा कि मैं अपने इस प्यारे गुरुदेव का पूजन सोने के मन्दिर में बैठा करके करूँ किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है। करोड़ों, अरबों का सोना कहाँ से आवे। महाशय लाहिड़ी के मन में यह धारणा घूम ही रही थी कि उनके गुरुदेव उनके मनोभावों को तत्काल समझ गये और कहा बेटा लाहिड़ी, तुम स्वर्ण मन्दिर में बैठकर दीक्षा लेना चाहते हो। अच्छा, ऐसा ही हो जाता है। तुम दीक्षा के लिये तैयार हो जाओ। श्री गुरुदेव के मुख से इस प्रकार के वचन निकल जाने के बाद, महाशय लाहिड़ी ने देखा कि वहाँ पर रत्नों से जड़ित बड़ा भारी प्रकाशमय स्वर्ण मन्दिर स्वतः ही तैयार हो गया। गुरुदेव ने आज्ञा दी, अच्छा लाहिड़ी, तुम इसमें चले आओ और इसमें बैठकर हमारा पूजन करो। महाशय लाहिड़ी ने ही उस स्वर्ण मन्दिर में गुरुदेव का पूजन किया, एक उच्चतम आध्यात्म प्रसाद को प्राप्त किया। श्री गुरुदेव ने एक बार में ही उनके सिर पर हाथ रखा और लाहिड़ी को सिद्धि शक्तियों का भण्डार बना दिया। महाशय लाहिड़ी ठीक चार दिन वहाँ रहे। चार दिन के बाद अपने ऑफीसरों के बुलाने पर पुनः यथास्थान लौट आये। उसके बाद उनके दिव्यानुभव दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। और थोड़े समय के अन्दर ही वह पूर्ण योगी बन गये। और उन्होंने भारतवर्ष में और विदेश में योग प्रचार कराया। ब्रह्मानन्दी योगानन्द और उनकी शिष्या बहिन दया महाशय लाहिड़ी के ही कृपा पात्र हैं। जो आजकल भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर योगदा सोसायटी चला रहे हैं।

कानपुर में घटने वाली एक योगी की शक्ति की अद्भुत घटना

नर कंकाल में प्राण संचार

अभी कोई ८ वर्ष पूर्व मई सन् १९६१ को आगरा से प्रकाशित होने वाले "सैनिक" अखबार में एक घटना प्रकाशित हुई (जिसको उसने "स्वतन्त्र भारत" अखबार कानपुर से प्रकाशित होने वाले से प्राप्त किया) कानपुर में गङ्गा के किनारे स्थित असेन व्यायाम शाला में श्री दण्डी स्वामी विद्यानन्दी ने एक योगशक्ति का अद्भुत प्रदर्शन किया जिसमें उन्होंने एक नर कंकाल (अस्थि पंजर) को नंगा करके प्राण संचार किया और थोड़ी देर में

वह मनुष्य आकृति के रूप में लोगों के सामने जिन्दा होकर बैठ गया। क्योंकि यह क्रिया दण्डी स्वामी ने पर्दे के अन्दर की इसलिये कुछ लोगों के मन में शंकायें बनी रहीं। उनमें से प्रधान आलोचक श्री भूदेव शर्मा विद्यालङ्कार थे। शंका निवृत्ति के लिये कानपुर के सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने श्री स्वामी जी से पुनः प्रदर्शन की माँग की। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और कुछ समय बाद उसी प्रकार से पुनः प्रदर्शन किया गया। भूदेव शर्मा विद्यालङ्कार के द्वारा ही किसी व्यक्ति का अस्थि पंजर मँगाया गया और उसमें प्राण संचार करके बहुत जल्दी ही मनुष्य रूप में परिवर्तित कर दिया। कानपुर के भूतपूर्व सिविल सर्जन श्री दीक्षित ने उस अस्थि पंजर से बने हुए मनुष्य की नाड़ी देखी और पूरा परीक्षण किया और बाद में उन्होंने सबके सामने परिणाम घोषित कर दिया कि अस्थि पंजर से बना हुआ यह व्यक्ति बिल्कुल जिन्दा मौजूद है। चाहे कोई भी उसका परीक्षण कर सकता है। भूदेव शर्मा विद्यालङ्कार ने उसको मनुष्य रूप में पूर्णरूपेण ठीक देखा। ठीक इसी प्रकार की एक घटना २०३ वर्ष पहले बिला मिर्जापुर के छोटे से एक गाँव बरेनी में घटित हुई थी। वहाँ पर भी एक महात्मा ने एक अस्थि पंजर मँगाकर उसमें प्राण संचार किया। और वह मनुष्य जिन्दा हो गया किन्तु उसका परिवर्तन उस स्थिति में हुआ जिस स्थिति में वह मर गया था अर्थात् तीव्र बुखार की हालत में ही वह सब के देखने में आया। अस्थि पंजर में प्राण संचार करने वाले महात्मा से लोगों ने पूछा कि यह कितने दिन जिन्दा रहेगा, उन्होंने कहा कि यह अधिक से अधिक आठ दिन ही जिन्दा रह पायेगा, उसके बाद यह जिन्दा नहीं रह सकेगा। क्योंकि यह अपनी आयु भोग चुका है। इस प्रकार की अद्भुत घटनायें भारतवर्ष में समय-समय पर घटित होती रहती हैं। योगिराज लोगों की जिन अद्भुत अद्भुत घटनाओं का स्थान-स्थान पर हमारे इतिहास में वर्णन मिलता है, उस प्रकार के महापुरुष आज कलिकाल के समय में भी मौजूद हैं।

इसलिये योगी की शक्ति अनिर्वचनीय शक्ति है। ये लोग "कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम" की ताकत वाले होते हैं अर्थात् काम करदें, बिगड़ी को बना दें। बनी को बिगाड़ दें और बिगड़ी को फिर बना दें। इस प्रकार की सर्व सामर्थ्यता हिमालय की कन्दराओं में छुपकर रहने वाले सिद्ध योगिराजों के अन्दर रहती है। योग ही एक इस प्रकार की विद्या है जिसको पाकर के कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता और इसका अवलम्बन लेने वाला पवित्र जिज्ञासु अवश्य सब प्रकार से कृतार्थ हो जाता है।

★ मनुष्य ही विश्वात्मा और परम अमृत है। मनुष्य ही ब्रह्म है और मनुष्य के महत्व की अनुभूति प्राप्त करना ही मुक्ति प्राप्त करना है। वह विश्वरूप है। मिथ्या के आवरणों में प्रच्छन्न मनुष्य को पहचानना ही अविद्या के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना है।

—मुण्डकोपनिषद् २/१/१०

श्री रामचरित मानस में योग

॥ श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

श्री रामचरित मानस एक भक्ति प्रधान धर्म-ग्रन्थ है। यह समस्त वेदों एवं पुराणों का सार है। इसका मुख्य विषय कर्म प्रधान भक्तियोग है। इसमें आदि से लेकर अन्त तक कर्म एवं भक्ति का सरल रूप से विवेचन किया गया है। रामायण कर्मयोग के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि मनुष्य अपने वर्णाश्रमोचित कर्त्तव्यकर्मों को निष्काम भाव से करता हुआ अन्त में मोक्ष का अधिकारी बनता है। जैसे—

धर्म ते बिरति जोग ते ज्ञाना।
ज्ञान मोक्षप्रद बेद बखाना॥

अर्थात् कर्त्तव्य पालन रूप धर्म का आचरण करने से मनुष्य वैराग्यवान बन जाता है। कर्मफल में उसकी आसक्ति नहीं रहती और वह निष्काम कर्मयोगी बनकर योगसिद्धि को प्राप्त होता है। योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा ज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

श्री रामायण कर्मयोग का एक आदर्श ग्रंथ है। इसकी विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त-ग्रंथ होने के साथ-साथ स्वयं ही दृष्टान्त ग्रंथ भी है। अर्थात् इसमें जहां एक ओर योग सिद्धान्तों को समझाया गया है वहां दूसरी ओर योगियों के योग-ऐश्वर्य को उदाहरण के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

मनुष्य जन्म की दुर्लभता एवं उसकी सार्थकता

श्री रामचरित मानस में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। देवता भी उसके लिये तरसते हैं। अनादि काल से विविध योनियों में भटकता हुआ जीव प्रभु की अहैतुकी दया से मनुष्य शरीर धारण करता है। अतः मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह सद्गुरु की शरण में जाकर पूर्ण उत्साह के साथ योगाभ्यास करता हुआ अपना जीवन सार्थक बना ले। जो अभागा मनुष्य इस अमूल्य जीवन को सांसारिक विषयों के सेवन में गँवा देता है उसे बाद में पछताना पड़ता है। यह बात निम्नलिखित चौपाइयों में समझायी गई है—

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोक्षकर द्वारा।
पाइ न जेहि परलोक संवारा॥
सो परत्र दुख पावई,
सिर धुनि-धुनि पछिताहि॥
कालहि कर्महि ईश्वरहि,
मिथ्या दोष लगाय॥

मनुष्य शरीर इस भवसागर को पार करने के लिये एक सुदृढ़ नौका के समान है। साधना के लिये अनुकूल वातावरण का मिलना ईश्वर की कृपा रूप अनुकूल वायु है। उस मनुष्य शरीर रूपी नौका को चलाने के लिये कुशल मल्लाह के रूप में सद्गुरुदेव मिले हुए हैं। ये तीनों ही अत्यन्त दुर्लभ साधन प्राप्त हो जाने पर भी जो आत्मोद्धार के लिये प्रयत्न नहीं करता वह मन्द बुद्धि निन्दा का पात्र है और आत्मघाती की भाँति

अधोगति को प्राप्त होता है। जैसे—

नर तनु भवबारिधि कहँ बेरो।
सम्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मन्दमति, आत्महा गति जाइ॥

जीव माया एवं ईश्वर का स्वरूप

मानसकार गोसाईं तुलसीदास जी ने जीव, माया एवं ईश्वर का रहस्यमय स्वरूप जन-साधारण के हितार्थ बहुत सरल भाषा में और बहुत थोड़े शब्दों में स्पष्ट किया है।

जीवात्मा का स्वरूप

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
सहज सुमन चेतन सुखराशी॥
सो मायावश भयउ गोसाईं।
बन्ध्यो कीर मरकट की नाईं॥

अर्थात् ईश्वर का अंश होने के कारण जीव अविनाशी है, चेतन है, निर्मल है तथा स्वतः ही सुख की खान है किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वह तोते और बन्दर की भाँति बन्धन में पड़ा हुआ है।

माया अथवा प्रकृति

मैं अरु मोर तोर तें माया।
जो बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥

मैं और मेरा तथा तू और तेरा यह भाव ही माया है जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है। इन्द्रिय और इन्द्रियों से परे जहाँ तक मन जाता है उसे माया समझना चाहिये।

जीव और ईश्वर में भेद

माया ईश न आपु कहँ, जानि सकै सो जीव।
बन्ध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥

जो माया के वश में है और अपने को माया का प्रेरक जानता है वह जीव है तथा जो बन्धन और मोक्ष का दाता है एवं सबके ऊपर माया का प्रेरक है वही ईश्वर है।

मायाबश्य जीव अभिमानी।
ईसबश्य माया गुणखानी॥
परबस जीव स्ववस भगवन्ता।
जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

अभिमानी जीव माया के गुण में रहता है जबकि सत्व, रज एवम् तम रूपा त्रिगुणात्मिका माया ईश्वर के वश में है। जीव पराधीन है किन्तु ईश्वर स्वतन्त्र है। जीव अनेक हैं लेकिन ईश्वर एक है।

क्रियायोग

श्री रामचरित मानस में योग का स्वरूप तथा उसकी साधना-विधि बड़ी सरल भाषा में वर्णित की गई है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत योग के विविध अङ्गों का गागर में सागर की तरह समावेश किया गया है। तप, स्वाध्याय एवम् ईश्वर प्रणिधान रूप क्रियायोग का निरूपण हर स्थान पर इस प्रकार किया गया है कि—जनसाधारण उस पर आचरण करता हुआ योगारूढ़ हो सकता है।

श्री गोसाईं जी ने ईश्वर भक्ति (ईश्वर प्रणिधान) को समस्त सुखों की खान, योग का मूल और मोक्ष का दरवाजा बतलाया है तथा महामुनि काकभुशुण्डी, गृद्धराज जटायु, सतीक्ष्ण एवं परम भक्त हनुमान आदि का उदाहरण देते हुए अपने मत की पुष्टि की है। ईश्वर प्रणिधान से ही मनुष्य सद्गुरु कृपा का अधिकारी बनता है। भगवान सदा

उसके वश में रहते हैं और उसे समस्त योग-सिद्धियों से विभूषित कर देते हैं। भक्त हनुमान जी की दिव्य योग लीलायें इस बात को सिद्ध करती हैं।

स्वाध्याय भी योगसिद्धि का एक सरल और उत्कृष्ट साधन है। इसी बात को समझाने के उद्देश्य से तुलसीदास जी ने रामायण के बालकाण्ड में एक नाम रामायण की रचना कर डाली। जिसकी कुछ चौपाइयाँ निम्नलिखित हैं—

नाम जीह जपि जागहिं जोगी।
बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लव लाएँ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

योगीजन जिह्वा से निरन्तर प्रभु का नाम जपकर और वैराग्यपूर्वक संसार को त्यागकर मोहरूपी रात्रि में जागते हैं जिससे वे उस ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करते हैं जिसकी न तो किसी से उपमा की जा सकती है और न वाणी से उसका वर्णन किया जा सकता है तथा जो सब प्रकार के दुःखों से रहित एवम् नाम व रूप से परे है।

जो मनुष्य आत्मा के गूढ़ रहस्यों को जानना चाहते हैं वे जिह्वा से निरन्तर मन्त्र जाप करते रहने के फलस्वरूप प्रकृति एवम् परमात्मा के सभी रहस्यों को जानने में सफल हो जाते हैं। जो साधक श्रद्धापूर्वक मन लगाकर निरन्तर मन्त्र जाप करते हैं वे अणिमादि सकल योग सिद्धियों को पाकर सिद्ध बन जाते हैं। महान दुःखी मनुष्य भी प्रेमपूर्वक मन्त्र जाप करने से कष्टों से मुक्त हो जाता है और हर प्रकार से सुखी हो जाता है।

सत्संग महिमा

श्री रामचरित मानस में सत्संग को ही कल्याण का प्रमुख साधन बताते हुए यह सिद्ध किया गया है कि बिना सत्संग के मनुष्य योग की उत्तम निधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

निम्नलिखित चौपाइयों में सत्संग की महिमा का मुक्तकण्ठ से गान किया गया है—

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

सन्तों का समाज आनन्द और मंगल का दाता है और एक चलता-फिरता तीर्थराज है। परम प्रभु राम की भक्ति ही वहाँ गंगा की धारा है और परमेश्वर की चर्चा का प्रचार ही मानो सरस्वती नदी है।

मज्जन फल देखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकहि मराला॥
बाल्मीकि नारद घटजोनी।
निज-निज मुखनि कही निज होनी॥

उस सत्संग रूपी तीर्थराज में स्नान करने का फल तत्काल मिल जाता है।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

सम्पादकीय :—

सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन जन्म-दिवस

स्मृतियों विजय दशमी का पावन पर्व श्री सिद्धगुफा से सम्बन्धित बालकों में नई चेतना एवम् उत्साह का संचार कर देता है। क्योंकि इस पर्व का सम्बन्ध हमारे सद्गुरुदेव भगवान से है। इसी पावन दिवस पर हम जैसे अनेकानेक प्राणियों का उद्धार कर अमर जीवन देने के लिये ही उनका आविर्भाव इस भूमण्डल पर हुआ। सद्गुरु शिष्य के जीवन की पूर्णता है। अस्तित्व एवम् भक्तित्व की पहचान है। जीवन का आलोक एवम् अभिन्न अंग है। या यों कहें कि शिष्य के जीवन के वह क्या नहीं है ? शिष्य का कल्याण करने वाला गुरु के समान इस त्रिलोकी में और कोई नहीं। सन्तों ने अपने हृदय की उदात्ततम श्रद्धा को गुरुदेव में ही समर्पित किया है। गुरु के विषय में सन्त सुन्दरदास कहते हैं—गुरु के बिना ज्ञान नहीं, गुरु बिना ध्यान नहीं, गुरु कृपा बिना आत्म-साक्षात्कार नहीं। गुरु बिना हृदय में प्रेम नहीं चाहे कोई कितना ही शिक्षित अथवा विद्वान क्यों न हो। उसका हृदय शुष्क ही रहेगा। गुरु बिना आत्म-निग्रह नहीं, मुक्ति नहीं—श्री गुरु एवम् उनके उपदेशों के स्मरण में लीन मन एक दिन श्री गुरु बन जाता है तब मुक्ति बच्चों का खिलौना अथवा साबुन के बुलबुले उड़ाने जैसा सरल बन जाता है। उनके स्मरण मात्र से अन्तर्ज्ञान स्वयं उद्भूत होता है सर्व वस्तुओं की समाप्ति हो जाती है। यद्यपि सद्गुरु तो नित्य स्मरणीय होते हैं किन्तु फिर भी ऐसे अति पावन क्षणों में वे विशेष रूप से स्मरणीय एवम् अर्चनीय होते हैं। उनकी अर्चना करने का अभिप्राय सद्गुरुदेव की महिमा का गुणानुवाद करना है। गुरुदेव के विषय में कोई क्या लिख सकता है क्योंकि हम उनके यथार्थ स्वरूप को जानते ही नहीं हैं किन्तु फिर भी उनके चरण-शरण में बैठने पर उनकी कृपा-लीला एवम् महानता का कुछ परिचय अवश्य ही मिल जाता है। महापुरुष भिन्न-भिन्न स्थानों पर जन्म लेते हैं। उनकी भाषा-आकृति देश काल के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है किन्तु महापुरुषों का अन्तःकरण एक जैसा ही होता है और वह महान होता है। अध्यात्म योग की पराकाष्ठा के अधिपति सद्गुरु ब्रह्म-स्वरूप होते हैं। इसी कारण से वे जीव मात्र को अपना अंश मानते हैं। 'मयि सर्वमिदं प्रोतम' इस भगवद्वचन के अनुसार वे एकत्वदर्शन करते हैं। 'तत्र कः शोकः कः मोहः एकत्वमनुपश्यतः' अर्थात् सबमें एकत्व ब्रह्म को देखने वाले के लिये कोई शोक और मोह का कारण नहीं होता। हमारे नित्य स्मरणीय गुरुदेव जी का प्राणिमात्र के प्रति वात्सल्य प्रेम ही उनके ब्रह्मत्व का परिचायक है। वे अपने प्रत्येक बालक को अपना आत्मतेजांश अथवा हृदय का टुकड़ा कहकर सम्बोधित करते थे। सर्वशक्तिमान ईश्वर ही गुरु रूप बनकर आते हैं

और जीव पर कृपा कर उसे अपने अभय अमर पद का उपदेश देते हैं। ऐसे सद्गुरु तत्व की चर्चा, लीला गुणानुवाद एवम् उपासना ही शिष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है। सद्गुरु चिन्तन एवम् चर्चा में ही वह आत्मविभोर रहता है। गुरु की महिमा का वर्णन करने वाला व्यक्ति, गुरु भक्त को अपने प्राणों से भी प्यारा लगता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी उसी सद्गुरु तत्व का ही प्रतिपादन हुआ है। भगवान् स्वयं अपने मुखारविन्द से कहते हैं कि जो इस सद्गुरु तत्व की चर्चा करता है अथवा इसका प्रचार-प्रसार करता है संसार में उससे अधिक मेरा कोई प्यारा नहीं है। सद्गुरु चर्चा या भक्ति से विमुख व्यक्ति को गुरुभक्त दूर से ही विषवत् त्याग देता है चाहे वह उसका कितना ही प्रिय सम्बन्धी क्यों न हो। तुलसीदासजी ने ऐसे व्यक्तियों के लिये कहा है—'तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।' सद्गुरु का जो प्यार जीवन में शिष्य को मिलता है वह ही जीवन पर्यन्त शिष्यका पाथेय बनकर जीवन यात्रा को सुखद व सरस बनाता है।

गुरुगीता का लेख है कि ब्रह्म गुरुदेव के मुख में स्थित है और उनकी कृपा से प्राप्त होता है। गुरुदेव अपने शिष्य को सर्वत्र सद्गुरु सत्ता का बोध कराते हुए उसे उसी तत्व में प्रतिष्ठित कर देते हैं। जब तक सर्वत्र उस तत्व का दर्शन करने की क्षमता नहीं आ जाती तब तक योगी का योग अधूरा ही माना गया है। उसी ब्रह्म तत्व अथवा सद्गुरु तत्व का प्राकट्य समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपों से सद्गुरु के रूप में होता रहता है। इसी के अनुसार ही उस-उस समय के संस्कारी जीवों का उद्धार उस गुरु देह से होना नियति का विधान है। गुरुदेव का शिष्य के लिये एक ही संकल्प होता है और वह यह कि किसी भी प्रकार से तापों से विदग्ध हो रहा यह जीव तापों से छूटकर उनके परम धाम को प्राप्त कर ले। गुरुदेव को किसी से पूजा-अर्चना की अपेक्षा नहीं, यदि उन्हें कोई अपेक्षा है तो वह शिष्य का कल्याण ही है। गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से कहा करते थे कि मेरी सबसे बड़ी सेवा यही है कि तुम अपने गुरुमन्त्र का नियमित दो घण्टा जाप करो तथा ध्यानाभ्यास करो।

ऐसे पारसमणि गुरुदेव को पाकर भी कलिकाल के मोहभ्रम से ग्रसित शिष्य उनका चिन्तन त्याग सुख-सम्पत्ति एवम् वैभव की ओर उन्मुख हैं। ईर्ष्या, राग-द्वेष, निन्दा, चुगली एवम् परदोष दर्शन ही साधना का अभिन्न अंग समझ लिया है। विवेकवान शिष्य को चाहिए कि ऐसे विलष्ट कलिकाल के समय में भी सच्चे सद्गुरु को पाकर अपना परम हित लाभ कर लें। यही सद्गुरुदेव के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। सद्गुरुदेव के उपदेश, आदर्श एवम् उपदिष्ट साधना पर चलना ही सद्शिष्य का परम धर्म है।

इस पावन पर्व पर अपने आत्मरूप गुरुदेव को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम है।

★ मनुष्य-जीवन की सफलता भगवत्-प्राप्ति में है। यह तन बार-बार मिलता नहीं। इसलिए आगे की यात्रा के लिये, अभी से भगवत्-भजनरूपी धन साथ ले लो। —सन्त वाणी

पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः

ॐ श्री द्वारका प्रसाद शर्मा
३०६-ए (अनिमेष) "प्रियानिकुञ्ज" एल्डिको-उदयन २,
अतरटिया, रायबरेली रोड, (लखनऊ)

(१)

श्रीमद्गुरुणां पदपद्म ध्यानं, समस्त देवार्चनवन्दनाद् वरम् ।
वाचस्तु तेषां सकलार्थ पूरकाः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(२)

अनन्तश्री भिः समलङ्कृतो यो, योगाग्निना तप्त सुवर्ण देहः ।
कारुण्य मूर्तिः करुणार्णवो यः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(३)

सत्काय यः कल्पद्रुमस्तु साक्षात्, यद्दर्शनं पुण्यचयोद्भवाय ।
बिभर्ति यस्यार्क निभस्तु तेजः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(४)

करोति ध्वसं सकलं तु कल्मषं, गङ्गेव पापं हरते समग्रम् ।
शशीव सौम्यः सुखदः सुशीतलः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(५)

आगत्य भूवि यः शिवरूप एव, योगाय बीक्षामवदज्जनेभ्यः ।
भवे तापतप्तान् परमौषधो यः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(६)

श्री रामलालस्य महाप्रभोर्वै, कृपांशभूतोऽस्ति महान् गुरुनः ।
अस्मत्कृते सः परमेष्ट देवता, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(७)

अस्मद् गुरुणां महनीयवर्चसां, वाणी गुणानां कथनेऽस्ति नो क्षमा ।
स एव ब्रह्मा, विभुरस्ति शङ्करः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

(८)

योगीश्वर सः परमेश्वरो नः, अस्मत्कृते सः सर्वार्थ सिद्धिदः ।
वसेत्सदा स मम नेत्रयोर्द्वयोः, पुनान्तु मां श्री गुरुपाद पांसवः ॥

★

गुरुपाद की रज करें पूत मुझको

(हिन्दी पद्यानुवाद)

(१)

श्रीमद् गुरु के पदपद्म का ध्यान, है श्रेष्ठ सब देवता-वन्दनादि से।
वाणी है जिनकी सकलार्थपूरका, गुरुपाद की रज करे पूत मुझको॥

(२)

अनन्तश्री से रहे जो विभूषित, योगाग्नि से तप्त सुवर्ण देह है।
करुणा के विग्रह, करुणा समुद्र वे, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(३)

रहे भक्त हित कल्पद्रुम ही हैं साक्षात्, दर्शन है पुण्योदय से ही जिनका।
सदृश सूर्य जिनका प्रकाशित है तेज, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(४)

सकल पाप का नाश करते रहे वे, गङ्गा सदृश जो हरते सकल अघ।
हैं सौम्य, सुखकर सुशीतल जो चन्द्रवत्, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(५)

आकर जगत में शिवरूप ही जो, देते रहे योगदीक्षा जनों को।
भवोत्थ तापों हित उत्तमौषध, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(६)

श्री रामलाल प्रभुवर के जो थे, कृपांश उद्भूत महान् हमारे।
गुरुवर यद्यपि, थे परमेष्ठ देवता, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(७)

हमारे परम तेज युत उन गुरुत्व, निमित्त गुण में सिरा अहंभा है।
ब्रह्मा वही, हैं विभु, शङ्कर स्वयं, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

(८)

योगीश हैं वे, परमेश भी वे, हमारे लिये वे सकल सिद्धिदाता।
हृत् नेत्र में वे करें वास सर्वदा, गुरुपाद की रज करें पूत मुझको॥

★

(पृष्ठ ६ का शेष)

सत्संग सरिता में गोता लगाते ही कौआ कोयल बन जाता है, और बगुला हंस बन जाता है, अर्थात् महान अज्ञानी और पतित व्यक्ति भी परम पवित्र, ज्ञानी एवम् सबका पूज्य बन जाता है। इस बात को सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिये क्योंकि सत्सङ्ग की महिमा अपार है। वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य जी ने अपने-अपने मुख से अपनी आप बीती कही है—

बिनु सत्सङ्ग न हरि कथा,
तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद,
होहि न दृढ़ अनुराग॥

बिना सत्सङ्ग के मनुष्य परमेश्वर की चर्चा सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकता, बिना सत्सङ्ग के उसका अज्ञान दूर नहीं होता और जब तक अज्ञान पूरी तरह नष्ट न हो जाये तब तक प्रभु चरणों में प्रगाढ़ भक्ति नहीं हो सकती।

गुरु भक्ति महिमा

श्री रामचरित मानस में गुरु भक्ति को योग का मूल और मोक्ष का दरवाजा कहा गया है। बिना गुरु-भक्ति के कोई भी व्यक्ति योगी नहीं बन सकता और इस भवसागर को पार नहीं कर सकता। जैसे—

बिनु गुरु भव निधि तरइ न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई॥
श्री गुरुपद नख मणि गण ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो प्रकाशू।
बड़े भाग उर आवहि जासू॥

योग सिद्धियां

जैसा पहले कहा जा चुका है कि श्री रामचरित मानस एक उत्तम योगपरक ग्रन्थ है इसमें योग सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के साथ-साथ सिद्धयोगियों के अपार योगैश्वर्य का स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है। निम्नलिखित घटनाओं में योग-सिद्धान्तों की स्पष्ट झलक मिलती है।

जनकपुरी में परम योगिनी सीता द्वारा ऋद्धि-सिद्धियों को आदेश देकर चमत्कारपूर्ण रीति से बारात का आतिथ्य कराना, महर्षि भारद्वाज द्वारा राजा भरत तथा उनकी सेना के आतिथ्य के लिये बीरान जंगल में उत्तमोत्तम महल, दास-दासियां तथा अनेकानेक सुसुस्वादु रुचिर व्यञ्जनों की संरचना करना उनके अपार योगैश्वर्य को प्रदर्शित करता है।

श्री हनुमान जी की प्रत्येक लीला योग सिद्धियों पर आधारित है। समुद्र पार करते समय तथा संजीवनी बूटी के लिये जाते समय उन्होंने लघिमा तथा आकाशगमन सिद्धियों का प्रयोग किया। बीच समुद्र में लंकिनी नाम्नी राक्षसी का सामना करने के लिये महिमा तथा अणिमा सिद्धियों का प्रयोग किया। अहिरावण का यज्ञ ध्वंस करने तथा उसके बन्धन से श्रीराम-लक्ष्मण को मुक्त करने के लिये अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा इन सभी योगसिद्धियों का सहारा लिया।

रावण के दरबार में बड़े-बड़े योद्धाओं द्वारा यहाँ तक कि स्वयं महाबली रावण द्वारा भी अंगद के पांव का न हिला पाना गरिमा सिद्धि का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक घटनायें हैं, जिनमें योग-सिद्धियों का पूर्ण परिचय मिलता है।

अतः कहा जा सकता है कि श्री रामचरित मानस एक उत्तम योगपरक महाकाव्य है। इसमें साधना-योग, सिद्धयोग एवम् यौगिक विभूतियों को बड़े सरल एवम् सरस रूप में वर्णित किया गया है। इसका अध्ययन एवम् मनन करने वाला व्यक्ति अल्पकाल में ही योगारूढ़ होकर कल्याण का भागी बन सकता है। ★

गुरु कुम्हार—शिष्य कुम्भ

श्रीमति कविता शर्मा

अस्तित्व में योग्य शिष्य तो आने वाले युग की सम्पत्ति होता है। सद्गुरु ऐसी ही सम्पत्ति का निर्माण करते रहते हैं, ऐसे ही अजीब ग्रन्थ लिखते हैं और इसीसे अपनी माया का विस्तार करते रहते हैं क्योंकि वह शिष्य उनका एक स्वप्न होता है, उनकी आँख में झिलमिलाता हुआ एक प्रकाश कण होता है। वे उस पर कृपा नहीं बरसाते, उसे सहज मार्ग पर नहीं ले चलते क्योंकि ऐसा करने से एक अनगढ़ हीरा चमक नहीं सकेगा और फिर उसका वह निर्मल प्रकाश नहीं बिखर सकेगा जो सद्गुरु की इच्छा होती है।

गुरु और माया निरन्तर रहते ही हैं। निरन्तर अपने चारों ओर माया का आवरण बनाये रखना और शिष्य को उसमें बँधने न देना यह सद्गुरु की ही क्षमता होती है। क्योंकि माया का आवरण बनाये रखना सहज कार्य नहीं होता। जिसे हम उनकी माया कहते हैं, वह वास्तव में उनकी निरन्तर सजाते रहने की और बढ़ते रहने की एक प्रक्रिया होती है।

मौन व अनजान रहते हुए सद्गुरु अपने शिष्य के उन बिन्दुओं को पकड़ते रहते हैं जो उसके जीवन के दुर्बल पक्ष होते हैं। वे निरन्तर उन बिन्दुओं पर चोट देते हुए उसे शुद्ध व निर्मल बनाने की क्रिया करते रहते हैं। जो भी गुरु साहचर्य में आता वह इस क्रिया से बच ही नहीं सकता। अन्तर केवल इतना होता है कि अन्य जहाँ इस रहस्य को समझ नहीं पाते, वहीं योग्य व चौकन्ना शिष्य गुरु साहचर्य में प्रत्येक हलचल पर गहरी दृष्टि रखता है। एक-एक क्षण पर उसकी कड़ी पकड़ होती है और सतर्क रहते हुए वह अपना आंकलन करता रहता है, अपने आपको टटोलता रहता है, दूसरे शब्दों के साथ वह एक जिज्ञासु बन जाता है।

इस प्रक्रिया में व्यर्थ कुछ घटित होता ही नहीं। मन में उठने वाला कोई भी विचार, अपने समीप होने वाली प्रत्येक हलचल, सुगबुगाहट सभी का निश्चित अर्थ होता है और जब व्यक्ति इन्हें समझ नहीं पाता तो उसे ईश्वर की माया कहकर टाल देता है क्योंकि विवेचन करने के लिये, खुद को समझने के लिये एक निस्वार्थ भाव चाहिये, एक ओर खड़े होकर वस्तुस्थिति को समझने का साहस होना चाहिये। अपने ओछेपन और घटियापन को समझने की हिम्मत होनी चाहिये जिसकी क्षमता बहुत कम लोगों में ही होती है अपने आपको टटोलकर अपने आप पर चोट देना अत्यन्त कठिन होता है।

जिस परम शान्ति और आनन्द की बात हम करते हैं जिसकी खोज में आत्मिकता

का पथ पकड़ना चाहते हैं उसकी यात्रा अपने अन्दर उतरने पर ही सम्भव होती है। तथा इस यात्रा में अपने अन्दर छुपे हुए प्रत्येक घटियापन का आभास हमें होता है। जो आत्मज्ञान सम्भवतः पहली बार हमें होता है वह झुलसाने की प्रक्रिया है।

व्यक्ति का बुद्धि पक्ष अत्यन्त सूक्ष्म तत्व है और वह व्यक्ति को निरन्तर एक आवरण में रखकर भ्रमित बनाये ही रखता है। व्यक्ति को सोचने का अवसर ही नहीं होता कि किसी घटना या प्रवृत्ति के पीछे विसंगति क्या है। निरन्तर आदर्श और भावना का तानाबाना व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर बुन जाता है कि व्यक्ति एक घटाटोप में रहते हुए खुद को ही भ्रमित बनाये रखता है।

सद्गुरु इसी आवरण पर आघात करते हैं और जब हमारी ही आँखों में छिपी वासनायें निकलकर हमारे सामने आती है तो बुद्धि एक नया तर्क देती है कि ये सब उनकी माया है। निरन्तर झूठ बोलते हुये हमें खुद से भी झूठ बोलना सीख गये हैं, जिसका नुकसान भी सबसे अधिक हमें ही हुआ है। निरन्तर आवरण में रहते हुए हम उस आनन्द की ओर बढ़ ही नहीं सके जो वास्तव में निस्पृहता का आनन्द है।

किन्तु गुरु का दायित्व यहीं पर समाप्त नहीं हो जाता। वे जानते हैं कि इस प्रकार से मेरा शिष्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर पायेगा और वे भांति-भांति से भ्रम तोड़ने का उपक्रम करते ही रहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ये जो मेरा शिष्य है वह अभी अबोध है उसे संसार की ऊँचनीच का पता ही नहीं है एक प्रकार से वह कच्ची मिट्टी का बना है। इसीसे वे ऐसी अनेक परिस्थितियों को संकेत रूप में अपने शिष्यों को दिखाते हैं जो इस संसार में व्याप्त है और ऐसा करते हुये भी निरन्तर उसको संभाले रखते हैं। जीवन की यात्रा तो सभी मोड़ों से होकर गुजरती है, इनमें से किसी मोड़ पर रोग है कहीं शत्रु हैं कहीं धन की समस्या है, कहीं घर के झगड़े हैं और कहीं पदच्युत हो जाने का भय है। दृश्य रूप में अथवा किसी घटना के रूप में या मानसिक रूप में गुरुदेव निरन्तर चैतन्य करते हुए शिष्य को विश्राम नहीं करने देते और निरन्तर गतिशील बनाये रखते हैं ताकि वह सामान्य शिष्य बनकर न रह जाये क्योंकि सामान्य शिष्य किसी के लिये छाँव नहीं बन सकता, किसी डगमगाते पैरों की लाठी नहीं बन सकता, किसी के झुलसते हृदय पर सुगन्धित प्यार बनकर छा नहीं सकता और यदि ऐसा नहीं बन सकता तो उसमें गुरु का गौरव समाप्त होता है। आने वाली पीढ़ी गुरु कृपाओं का फल पाने से वंचित रह जाती है।

यह एक लम्बी और कष्टदायक प्रक्रिया है जिसमें प्रतिक्षण गुरु को अपने शिष्य पर प्रहार करना पड़ता है और शिष्य को भी प्रहार सहना पड़ता है। बहुत ही कम कहीं एक या दो शिष्य ऐसी कड़ी आग में से निकल पाते हैं और वे ही जान पाते हैं यह झुलसन और तपन जो मुझे मेरे गुरु से मिल रही है उनका कोई आनन्द नहीं है वरन् यह तो निर्माण की एक प्रक्रिया है जैसे हम सुनार को सोने को तपाते हुए देखते हैं और जैसे हम फौज के एक सिपाही को कड़ी मेहनत में लगे हुये देखते हैं।

एक प्रमुख जनरल ने कहा था कि हम जितना अधिक पसीना अपने अभ्यास स्थल पर बहा देते हैं उतना ही कम खून युद्ध स्थल

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

आज्ञा-पालन

संकलित—श्री विष्णुप्रसाद व्यास
(बोना)

"अपने आराध्य देव के पावन वचन भक्ति मार्ग की प्रथम सीढ़ी है। भक्ति के दुर्लभ फल को वही प्राप्त कर सकता है जिसने अपने आराध्य देव के पावन वचनों को सत्य-सत्य मानना सीख लिया है।"

सत्पुरुषों का कथन है—

॥ दोहा ॥

दीपक सद्गुरु वचन का, लेकर चले जो हाथ।
जगत अंधेरी कोठरी, कबहू न भटके पाथ॥

इस जगत रूपी अन्धकारमय कोठरी में जो जिज्ञासु अपने इष्टदेव के श्री वचनों रूपी प्रकाश को साथ लेकर चलता है, वह बिना किसी कठिनाई के इस अन्धकारमय जगत को पार कर लेता है, वह मार्ग में भटकने नहीं पाता।

जिस प्रकार सड़क के किनारे लगे हुए प्रकाश स्तम्भ के प्रकाश में जो मनुष्य यात्रा करता है, वह मार्ग के उतार चढ़ाव तथा रुकावटों को भलीभांति देख लेता है और अत्यन्त सुगमता से अपने लक्ष्य बिन्दु तक पहुँच जाता है परन्तु इसके विपरीत जो मनुष्य प्रकाशमय मार्ग को छोड़कर अंधेरे में यात्रा करता है वह अनेकों ठोकरें खाता है और अपने मार्ग से भटककर अनेक प्रकार के दुःख-कष्ट सहन करता हुआ अपने लक्ष्य से कोसों दूर हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार अपने इष्टदेव के पावन वचन अर्थात् आज्ञा और गुरु भक्ति के पथ पर चलने वाले के मार्ग में प्रकाश का काम करते हैं। जो इस प्रकाश का सहारा लेकर चलता है वह बड़ी सुगमता से अपने सही मार्ग को ढूंढ लेता है तथा मार्ग के उतार-चढ़ाव एवं रुकावटों से बचते हुए अपने लक्ष्य बिन्दु पर पहुँच जाता है।

आम संसारी लोग गुरु भक्ति के प्रकाश-मय मार्ग को छोड़कर सांसारिक मोह ममता के अन्धकार मार्ग में अपने लक्ष्य बिन्दु को खोज रहे हैं। इनकी दयनीय दशा सन्तों-सत्पुरुषों से देखी नहीं जाती क्योंकि उनका हृदय दया से परिपूर्ण तथा अत्यन्त कोमल होता है।

॥ चौपाई ॥

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुःख द्रवहि सन्त सुपुनीता॥
(रामचरित मानस)

सन्तों सत्पुरुषों का हृदय मक्खन के समान होता है ऐसा कवियों ने कहा है परन्तु उन्होंने असली बात को नहीं जाना, क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से द्रवित होता है, परन्तु पवित्र सन्तजन दूसरों के दुःख से द्रवित हो जाते हैं।

इसलिये संसारी जीवों की दयनीय दशा को देखकर सत्पुरुषों का हृदय पिघल जाता है और वे अपने सदुपदेशों द्वारा जीव को सही मार्ग दर्शाते हैं। जो उनके पावन वचनों को हृदय में धारण कर भक्ति मार्ग पर चल

पड़ता है वह संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा पा जाता है।

शिव पत्नी पार्वती जी की कथा इस बात की पुष्टि करती है कि जिसे अपने गुरुदेव के वचनों पर विश्वास नहीं है उसे स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

जिस समय पार्वती जी अपने गुरुदेव श्री नारद जी के पावन वचनों पर दृढ़ विश्वास रखकर शिवजी की आराधना में संलग्न थीं उस समय सप्तऋषि उनके इस विश्वास का परीक्षण करने आये तथा पार्वती जी को अनेकों प्रलोभन देकर उन्हें नारद जी के वचनों का परित्याग करने को कहा, तब पार्वती जी बड़ी दृढ़ता से उत्तर देती हैं—

॥ चौपाई ॥

नारद बचन न मैं परिहरऊँ।
बसउ भवनु उजरउ नहीं डरऊँ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥
(रामचरित मानस बालकाण्ड)

अर्थ—मैं नारदजी के वचनों का परित्याग नहीं करूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।

पुनः कथन करती हैं—

॥ चौपाई ॥

तजउँ न नारद कर उपदेसू।
आपु कहहिं सतबार महेसू॥

अर्थात्, स्वयं शिवजी सौ बार आकर कहें तो भी मैं नारद जी के उपदेश को न छोड़ूँगी।

इसी प्रकार सेवक को भी अपने इष्टदेव के वचनों में दृढ़ विश्वास रखना चाहिये और उनकी आज्ञा के अनुसार जीवन को ढालना चाहिये।

जिसका जैसा संस्कार हो उसीके अनुसार उस पर गुरु कृपा होती है। पिछले कई जन्मों से जो कोई साधना करता चला आ रहा है तो उस पर कृपा अधिक होगी, इसलिये गुरुदेव की उस पर कृपा अधिक है तो प्राकृतिक बात है। जिसका जितना पिछला संस्कार पड़ा है उतनी ही उसकी दृढ़ता और समर्पण भी तीनों में ज्यादा होते हैं। समर्थ गुरु रामदास के अपने शिष्यों में महाराज शिवाजी के बराबर दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो कुर्बानी कर सके। अपने और शिष्यों की उसकी परीक्षा के लिये उन्होंने एक रचना रची। उन्होंने दर्द से कराहना शुरू कर दिया। आवाज सुनकर शिवाजी दौड़े आये। हाथ जोड़कर पूछा—"भगवन्! कौन-सी तकलीफ है? कैसे वह दूर हो? सेवक हाजिर है। आज्ञा दीजिये।"

गुरुदेव बोले—"शिवा मुझे बहुत तकलीफ है। यह एक ही दवा से दूर होगी और वह मिलना बहुत मुश्किल है।"

शिवाजी ने पूछा—"भगवान्, बताइये वह क्या चीज है, सेवक हर सुमकिन कोशिश उसके लाने की करेगा।"

गुरुदेव ने कहा—"यह तकलीफ शेरनी के ताजे दूध पीने से ही दूर हो सकती है।"

शिवाजी ने कहा—"भगवन्! सेवक शेरनी का ताजा दूध लेकर अभी हाजिर

(शेष पृष्ठ २४ पर)

सन्त चरणदास एवं पातञ्जलि योग-दर्शन

* श्री डा० विजयसिंह

कबीर, नानक के ही समान सन्त चरणदास भी योगानुरक्त सन्त हो चुके हैं। सुरति-शब्द-योग, जिसकी उपलब्धि सद्गुरु कृपा की अनुकम्पा से साधकों को प्राप्त होती रही है। सन्त चरणदास सिद्धयोग के अन्तिम सिद्ध-साधक रहे हैं। इनके योग-सम्बन्धी स्वानुभव स्वरचित दोहों, चौपाइयों, छन्दों में वर्णित है। संस्कृत साहित्य में वर्णित योग-दर्शन को सामान्य हिन्दी भाषा में जन-जन तक सरलता, सुगमता से पहुँचाने का अपूर्व कार्य सन्त चरणदास जी ने किया है। पातञ्जलि योग-दर्शन, घेरण्ड-संहिता, शिव-संहिता, भगवद्गीता तथा औपनिषदिक योगोपदेशों को अपने स्वानुभूति के रस में भिगोकर सहज भाव से आपने वर्णन किया है। अष्टाङ्ग योग, जिसको सूत्रों में व्यवस्था भगवान पातञ्जलि ने की है, उन सभी गूढ़ योगाङ्गों का मनोरम वर्णन सन्त ने किया है। जो हम सभी के लिये पठनीय है एवं योग प्रेरणा का स्रोत भी है।

सन्त चरणदास ने शिष्य-सद्गुरु सम्वाद के रूप में पद्यात्मक रचना की है देखें—

शिष्य का निवेदन— इक अभिलाषा और है, कहि न सकूं सद्भाय।
हिये उठे सुख आयकरि, गिरा उलटी ह्वै जाय॥

गुरु आदेश— सद्गुरु तुम आज्ञा दई, कहो आपनी बात।
जो अभिलाषा मन विषे, बोलि कहो अब तास॥

शिष्य निवेदन— सद्गुरु तुम आज्ञा दयी, कहूँ आपनी बात।
योग अष्टांग बताइये, जाते हिये सिरात॥

सरल भाषा होने से अर्थ सुग्राह्य है। अतः महर्षि पातञ्जलि द्वारा बताया गया अष्टाङ्ग योग — 'यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।' का पद्यात्मक अनुवाद सन्त चरणदास जी ने निम्न प्रकार से किया है—

यम के अङ्ग प्रथम मुनि लीजे। दूजे नियम कहूँ चित दीजे॥
तीजे आसन हिय करि साधौ। प्राणायाम चौथि आराधौ॥
प्रत्याहार पाँचवाँ जानौ। छठे धारणा को पहिचानौ॥
सातवें ध्यान मिटै सब बाधा। कहै आठवाँ अङ्ग समाधा॥

पातञ्जलि योग-दर्शन में प्रथम अङ्ग यम के पाँच भेद—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह बताये गये हैं। परन्तु सन्त चरणदास ने अन्य योग-ग्रन्थ सम्भवतः हठ-योग प्रदीपिका का आधार लेकर यम के दस भेद—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य, (५) क्षमा, (६) धैर्य, (७) दया, (८) आर्जव, (९) मिताहार, (१०) शौच बताये गये हैं। जिनका परिचय नीचे दिये गये उद्धरणों में सुस्पष्ट है—

प्रथम अहिंसा ही सुनि लीजै । मन करि काहु दोष न दीजै ।
कटुवा बचन कठोर न कहिये । जीव घात तन सो नहिं दहिये ॥
तन, मन, बचन न कर्म लगावै । यही अहिंसा धर्म कहावै ॥
दूजे सत्य-सत्य ही बोलै । हिरदै तौलि बचन मुख खोलै ॥
तीजे अस्तै त्याग सुनीजै । तन, मन सों कुछ नाहिं हरीजै ॥
तन चोरी के लक्षण लाखै । मन की चोरी को नहिं राखै ॥

साधक को ब्रह्मचर्य के प्रति अति सचेष्ट रहना होगा, अतः देखें सन्त का इस अङ्ग के प्रति क्या निर्देश है—

यती होय दृढ़ कांछ गहीजै । वीर्य क्षीण नहीं होने दीजै ॥
मैथुन कहै अष्ट परकारा । ब्रह्मचारी रहे इनसे न्यारा ॥
सुमिरन तिरिया को नहिं करिये । जबपन मुरति रूप नहीं धरिये ॥
रस शृङ्गार पढ़ै नहिं गावै । नारिन सों नहिं हँसै हँसावै ॥
दृष्टि न देखै विष नहिं दौरै । मुख देखै मन होजा औरै ॥
बात इकन्त करै नहिं कबही । मिलन उपाय जु त्यागै सबही ॥
स्पर्श अष्टम निकट न आवै । काम जीति योगी सुख पावै ॥
अष्ट प्रकार के मैथुन जानो । इन्हें तजे ब्रह्मचर्य पिछानो ॥

क्षमा के बारे में सन्त ने निम्न प्रकार के वर्णन किये हैं—

पचवो सुखदाई क्षमा, जलन बुझावै सोय ॥
जो टुक आवै घट विषै, पातक डारै खोय ॥

कोई दुष्ट कछु कहि जावो । गाली देकर कोई सिखावो ॥
कै कोई शिर पर कूड़ा डारो । कै कोई दुःख देवो अरु मारो ॥
बाकी कछु न मन में लावै । उलटा उनको शीश नवावै ॥
ऐसी क्षमा हिये में लावो । बाले शीतल अग्नि बुझावो ॥

इन पंक्तियों में क्षमा के अन्तर्गत सहनशीलता, मृदु-भाषण, क्षोभ, परित्याग तथा उदारता पर जोर दिया गया है—

धैर्य—

छठा अङ्ग धीरज का जानो । धीरज ही हिरदय में आनो ॥
योग युक्ति धीरज सों कीजै । सब कारज धीरज सों लीजै ॥
धीरज सों बैठे अरु डोलै । धीरज राखि समुझि कर बोलै ॥
आनि परे दुःख न अकुलावै । धीरज सों दृढ़ता गहिलावै ॥

धीरज रहा तो सब रहा, काहू से न डराय ॥
सिंह प्रेत अरु बालका, धीरज सों डर जाय ॥

दया—समस्त धर्मों का मूल दया है । इसका विकास सर्वप्रथम हृदय में होता है, तदनन्तर कर्म और वाणी में प्रसार होता है—

दया सातवीं अब सुनि लीजै । सब जीवन की रक्षा कीजै ।
लख चौरासी का सुखदाई । सबके हित की कहै बनाई ॥
रहिये तन, मन, वचन दयाला । सबही सों निर्वैर कृपाला ॥

आज्जवं—आज्जवं के अन्तर्गत कवि ने कोमलता एवं दयालुता पर विशेष और दिया है। साधक को मनसा, वाचा, हृदय से तथा दृष्टि से कोमलता धारण करनी चाहिए—

अठवें करूँ आर्ज्जवं खोलै । कोमल हृदय से कोमल बोलै ॥
सबको कोमल दृष्टि निहारै । कोमलता तन-मन में धारै ॥
कोमल धरती बीज बोवावै । बहु बेगि फूलै फल लावै ॥
ऐसे कोमल हिया बनावै । योग सिद्धि करि पद पहुंचावै ॥

मिताहार—शुद्ध, अल्प तथा पोषक भोजन करना ही मिताहार है। सन्त के शब्दों में ही—

मिताहार जो नवें की, समझ लेहु मन माहि ।
सतगुन भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहि ॥
खावै अन्न विचारिके, खोटा खरा संभार ।
जैसा ही मन होत है, तैसा करै आहार ॥
सूक्ष्म चिकना हलका खावै । चौथा भाग छोड़ि करि पावै ॥
बानप्रस्थ कै हो सन्यासै । भोजन सोलह ग्रास गिरासै ॥
अरु गृहस्थ बत्तीस गिरासा । आवनीय न बहुत न श्वासा ॥
ब्रह्मचारी भोजन करै इतना । बदन-माह बीरज रहै जितना ॥

शौच—नैतिक कर्म-शुद्धी के अतिरिक्त राग-द्वेष तथा मानसिक पापों से बचने के लिये सन्त ने कहा है—

राग-द्वेष हिरदय सों टारै । मनसा खोट कर्म निवारै ॥

इसी प्रकार अष्टाङ्ग योग के मर्म को सर्व साधारण को ग्राह्य कराने हेतु महात्मा जी ने सरस-सहज भाषा में व्यक्त किया है। स्मरणीय है कि सहजोबाई महागुरुभक्त सन्त चरणदास जी की सेवा से ही सिद्धित्व को प्राप्त हुई थीं। जिसने अपने उन्नत सद्गुरु चरण भक्ति विह्वलता में कहा है— हरि को तज, गुरु न बिसारूँ।

मध्यकालीन सन्तों की परम्परा में सिद्धयोग ही सम्पूर्णता से व्याप्त है। जिसने सिद्ध सद्गुरु के चरणों में सहज समर्पण कर दिया वह इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त हो गया। अस्तु!

हम सभी को सदैव अपने श्री सद्गुरुदेव के उन कृपा कटाक्षों का स्मरण करते रहना चाहिये जिनके दृष्टिमात्र से सम्प्रज्ञात साधक को प्रज्ञापित हो उठता था।

कर्त्तव्य एवं आसक्ति

✍ पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

जीव मात्र का मनुष्य योनि में जन्म केवल अपने (बन्धन मुक्ति) कल्याण के लिये हुआ है। अतः जीव के सामने कोई भी, कैसी भी दुःखदायी या सुखदायी परिस्थिति आने पर—सुख की इच्छा का त्याग कर देना तथा सुखोपभोग बनी रहे, ऐसी इच्छा का त्याग करना ही सांसारिकता में कल्याणकारक साधन है।

श्रीमद्भागवत् महापुराण में वर्णन आता है—सृष्टि से पूर्व परमात्मा 'मैं' एक ही अनेक रूपों में हो जाऊँ। इस ही संकल्प से एक ही परमात्मा प्रेम-वृद्धि की लीला के लिए अथवा प्रेम का आदान-प्रदान करने के लिए स्वयं श्री प्रभु ही—श्रीकृष्ण और श्री राधा इन दो रूपों में संसार के सम्मुख प्रकट होते हैं। इस ही परस्पर प्रकट्य लीला में संसार के सामने अद्भुत क्रीड़ा (खेल) रचना द्वारा, कर्तव्य एवं आसक्ति-बोध कराने वाली लीलामयी खेल की रचना करते हैं। उस खेल के लिये प्रभु के संकल्प से अनन्त जीवों को जो कि अनादि काल से थे और खेल के पदार्थों अर्थात् शरीर आदि को सृष्टि किये। खेल सभी आनन्ददायक भी होता है जब दोनों तरफ के खिलाड़ियों का विचार सामञ्जस्य लिए हो और सभी खिलाड़ी अपने आप में स्वतन्त्र (सु+अ+तन्त्र) हों। इसलिये श्री प्रभु ने जीवों को स्वतन्त्रता प्रदान की, अतः खेल में श्री श्री राधा का केवल भगवान् की तरफ आकर्षण ही रहा। सम्बन्ध को विलक्षणता यही है कि श्री राधाजी और भगवान अनन्त योगेश्वर श्रीकृष्ण में केवल आकर्षण ही रहा किन्तु खेल में उनसे भूल नहीं हुई जिसके कारण श्री राधा और भगवान श्रीकृष्ण में प्रेम-वृद्धि लीला मात्र ही हुई। परन्तु दूसरे जितने जीव हैं उन सबने भूल से संयोग-जन्य सुख के लिए खेल के उत्पत्ति-विनाशशील प्रकृतिजन्य पदार्थों के साथ अपना सम्बन्ध मान लिया जिससे वे जन्म-मरण के चक्कर में पड़ गये। गूढ़ बात तो इस स्थल पर यह है कि खेल के पदार्थ केवल खेल के लिये ही होते हैं, किसी के व्यक्तिगत नहीं होते। यदि कोई इसे व्यक्तिगत मानता है तो व्यष्टि (व्यक्तिगत माया) से परे नहीं होता और समष्टिगत माया में जीव घिरा ही है। खेल में जीव खेल खेलना तो भूल ही गया अपितु मिली हुई स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके खेल के पदार्थों अर्थात् शरीरादि को व्यक्तिगत मानने लगा, जिससे जीव उन पदार्थों में फँस गया और भगवान से सर्वथा विमुख हो गया। अतः जीव को चाहिये कि वह शरीरादि उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थों से विमुख होकर अथवा उन समस्त वस्तुओं में लिप्त न होकर भगवान के सम्मुख होवे ताकि नित्य सम्बन्ध से जन्म-मरण के महान दुःख से सदा के लिए छूट जाने की चेष्टा हो जाय क्योंकि कल्याण की उत्कट अभिलाषा वाला मनुष्य प्रत्येक परिस्थिति में परमात्म-तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति अर्थात् सांसारिक इच्छाओं की प्राप्ति इच्छा के अधीन नहीं है बल्कि कर्म के अधीन है, परन्तु परमात्मा की प्राप्ति कर्म के अधीन तो है ही नहीं। उस परमात्मा की प्राप्ति तो केवल स्वयं की उत्कट अभिलाषा मात्र से ही सम्भव है। क्योंकि प्रत्येक कर्म का आदि-अन्त अवश्य होता है अतः उन कर्मों का फल भी आदि-अन्त वाला ही होता है। विवेक-परक बात तो यह है कि आदि-अन्त वाले कर्मों से अनादि-अनन्त वाले परमात्मा की प्राप्ति सम्भवात्मक नहीं लगती किन्तु मनन-शील बात यह है कि सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये भी—शरीर, इन्द्रियाँ, मन एवम् बुद्धि की सहायता लेनी पड़ती है। अतः सांसारिकता में लिप्त न होते हुए दीर्घकाल तक अभ्यास के माध्यम से शरीरादि की सहायता द्वारा ही सुसमतापूर्वक परमात्म-तत्व का अनुभव किया जा सकता है।

श्री गीता में भगवान ने कर्तव्य के सम्बन्ध को संसार के साथ (समष्टि के साथ) जोड़ते हुए तीन प्रकार—स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप में बताया और कहा कि इन तीनों का शरीर (व्यष्टि) के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। विवेकजन्य बात तो यह है कि कोई भी जीव यदि इन तीनों को दूसरों की सेवा-भाव में अर्पित कर दे तो वह कर्म-योग होगा, स्वयं में असङ्ग होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाय तो इसे ज्ञान-योग कह सकते हैं। और यदि स्वयं (शरीरादि से) भगवान में समर्पित हो जाय तो जीव भक्ति-योग को सीधापार कर सकता है, इन तीनों की प्राप्ति के लिये श्री प्रभुजी ने जीव उद्धार हेतु प्रत्येक जीव को करने की शक्ति—कर्म के रूप में, जानने की शक्ति ज्ञान के रूप में और मानने की शक्ति विश्वास के रूप में दी है।

श्री मद्भागवत पुराण में, अध्यात्म रामायण तथा देवी भागवत में कहा है कि—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता
नृणां श्रेयोविधित्सया
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च
नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥
(११/२०/६)

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः
पुरा मोक्षाप्ति साधकाः ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो
भक्तियोगश्च शाश्वतः ॥
(अध्यात्म० ७/७/५६)

मार्गास्त्रयो मे विख्याता
मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो
भक्तियोगश्च सत्तम ॥
(देवी० ७/३७/३)

जीव की जब तक सांसारिक भोग और संग्रह की तरफ दृष्टि है, तब तक उसमें यह ताकत होना असम्भव है कि वह अपने स्वरूप को पहचान सके या उसकी तरफ दृष्टि भी डाल सके। फिर भी यदि किसी कारण से या किसी सत्संगति से खास विवेचन द्वारा यदि उधर दृष्टि चली भी जाय तो उसका स्थायी रहना बड़ा ही कठिन है। इसका कारण यह है कि नाशवान् पदार्थों की जो विशाल भीड़ मन में बैठी हुई है वह प्रियतम भगवान के स्वतः सिद्ध-सम्बन्ध को समझने नहीं देती और यदि समझ में आ भी जाय तो स्थिर नहीं रहने देती, किन्तु अगर उत्कट अभिलाषा जाग्रत हो जाय कि हम उस

श्री प्रभु तत्व का अनुभव कैसे करें ? तो निश्चय ही अभिलाषा में ऐसी ताकत है कि वह सांसारिक आसक्ति का नाश कर सकती है। स्वामी जी ने श्री रामचरित मानस में कहा है कि—

कहत कठिन समुझत कठिन,
साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय जौं,
पुनि प्रत्यूह अनेक॥
(उत्तरकाण्ड ११८ ख)

बालकाण्ड में तो यह वर्णन आता है कि अनादेश्वर भगवान शंकर स्वयं में (अभिलाषित पार्वती स्वरूप पहचान की वृत्ति) विष्णु स्वरूप भगवान राम के प्रकरण में विवेचनीय है कि—

शंकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखण्ड अपारा॥
(१/५८/४)

अर्थात् भगवान शंकर जी ने अपने सहज स्वरूप को सम्हाला, उसकी तरफ दृष्टि डाली। यहां समझने की बात तो यह है कि सम्हालने चीज वही आती है जो पहले से हमारे पास हो और केवल दृष्टि डालने यानी नित्ययोग या अनासक्त अभ्यास करके—सांसारिक सुख की कामना, आशा और भोग के कारण में विवेकपूर्वक विचार करके सुगमतापूर्वक कल्याण-परक बात ही जीव सोचे।

(पृष्ठ १८ का शेष)

होता है। सेवक को आपकी कृपा का भरोसा है कि दूध जरूर मिलेगा।"

यह कहकर शिवाजी फौरन पहिले राजमहल गये और सोने का कटोरा लिया, क्योंकि दूसरे बर्तन में शेरनी का दूध खराब हो जाता है, और फिर जंगल को चल दिये, जहां शेर रहते थे। बहुत-सी गुफाओं को देखने के बाद एक गुफा में शेर के बच्चे दिखाई दिये। उन्हें आस्था हो गई कि यहां शेरनी अपने बच्चों को दूध पिलाने अवश्य आती होगी। वे निडर होकर गुफा में कूद गये। वहां शेरनी मौजूद न थी, वे शेरनी के बच्चों के साथ खेलने लगे। थोड़ी देर में शेरनी आई। शिवाजी को देखकर वह गुर्राने लगी। वे धीरे से उसके पास गये, निवेदन करने लगे—"मां, गुरुदेव के लिये दूध चाहिए" गुरुदेव में पक्का विश्वास कुर्बानी और समर्पण से भरे हुए शिवाजी के निवेदन का शेरनी पर असर हुआ और वह गाय की तरह चुपचाप खड़ी हो गई। शिवाजी ने दूध निकाला और शेरनी को प्रणाम करके गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए, और दूध पेश किया।

कितने जबरदस्त ख्याल की मजबूती है कि गुरुदेव के लिए दूध की जरूरत है, इसीलिए शेरनी भी मना नहीं करेगी। ऐसे ही संस्कारी लोग होते हैं जो भक्ति का नमूना पेश करते हैं, यही गुरुभक्त कहलाते हैं। वे एक ही जन्म में भवसागर पार कर जाते हैं। ★

योग में शरीरस्थ शक्ति-केन्द्र सूर्यचक्र का महत्व

श्री पं० श्री भुवनन्दन जी मिश्र

इस विश्व-ब्रह्माण्ड में व्यापक अनन्त शक्ति का स्रोत कहां है ? ऋग्वेद के एक मन्त्र **'आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** तथा छान्दोग्य उपनिषद् के मन्त्र ३/१९/३ **'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम् सर्ववेदमग्र आसीत्'** के अनुसार भूर्लोक से द्युलोक तक तीनों लोकों को अपनी प्रकाश-पुञ्ज-किरणों द्वारा जीवन देने वाले सूर्य ही सबके जीवनदाता आत्मा है। समस्त जीवधारियों, वृक्षों एवम् वनस्पतियों के जीवन-विकास के लिये सूर्य की महत्ता सर्व-विदित है। सूर्य केवल प्रकाश-पुञ्ज ही न होकर विश्व में ऊर्जा तथा शक्ति के भी स्रोत हैं। सूर्य समष्टि जगत् के प्राण सिद्ध होकर समस्त जीवधारियों के भीतर जीवन को धारण एवम् संचालन करने वाले मुख्य तत्व 'प्राण' के रूप में सदैव कर्मशील बने रहते हैं। योग में हमारा नाभिकेन्द्र, मणिपूरक चक्र अथवा सूर्यचक्र ही इस प्राण-तत्व के उद्गम का केन्द्र माना गया है।

मानव-शरीर में आध्यात्मिक शक्ति के जागरण एवम् संचालन के आठ केन्द्र हैं, जिन्हें योगिभाषा में 'चक्र' नाम से सम्बोधित किया गया है। योग-साधना में आठों चक्रों के ध्यान तथा जागरण का अलग-अलग महत्व वर्णित है—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूरक (सूर्यचक्र), (४) अनाहतचक्र, (५) विशुद्धिचक्र, (६) आज्ञाचक्र, (७) बिन्दु-चक्र एवम् (८) सहस्रार। इनमें से मणिपूरक (सूर्यचक्र), अनाहत-चक्र, आज्ञाचक्र तथा सहस्रार—इन चार चक्रों का ध्यान साधक में आध्यात्मिक शक्ति के जागरण के लिये विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रस्तुत लेख में केवल मणिपूरक अथवा सूर्यचक्र, जो हमारी शारीरिक, मानसिक एवम् आध्यात्मिक शक्ति के जागरण का प्रमुख केन्द्र है, उसकी साधना पर ही विचार किया जायगा।

मानवीय शरीर-रचना में श्वसन-क्रिया की प्रणाली अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से प्रकृति द्वारा संचालित होती है, जिस पर केवल योग-साधना करने वाले मनीषियों ने ही ध्यान दिया है और उसका उन्होंने गहरा अध्ययन भी किया है। सर्वप्रथम मानवीय प्राण नाभि-केन्द्र (सूर्य-चक्र) से स्पन्दित हो हृदय में आकर टकराता है। हृदय तथा फेफड़ों का रक्त-शोधन एवम् सारे शरीर में संचार करने में सहायता करता है। यह तो प्राण की सामान्य स्वाभाविक क्रियामात्र है, किन्तु जब उसके साथ मानसिक संकल्प एवं अन्तश्चेतना को संयुक्त कर दिया जाता है, तो

वह चैतन्य एवम् अधिक सक्षम होकर विशेष शक्ति सम्पन्न हो जाता है। नित्यप्रति शनैः-शनैः अभ्यास पूर्वक प्राण एवम् मन को अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है। इन्द्रियों के स्वभावों (विषयों) का अनुशासी मन तो बहिर्मुखी होकर प्राणशक्ति का ह्रास ही करता है और समस्त शारीरिक एवं बौद्धिक दुर्बलताएँ उत्पन्न करता है। साथ ही दुर्लभ मानव-जीवन को पतन के गर्त में डाल देता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक साधना द्वारा जब मन का सम्बन्ध शब्द-स्पर्शादि विषयों से मोड़कर उसको अन्तर्मुखी कर दिया जाता है, तब वही मन प्राणशक्ति सम्पन्न बनकर बड़े-बड़े अलौकिक कार्य करने में समर्थ हो जाता है। जिस प्रकार सामान्य रूप से प्रवहमान वायु में अधिक शक्ति नहीं होती है, किन्तु जब उसको किसी गुब्बारे में बन्द करके छोड़ दिया जाता है, तो वह ऊर्ध्वगामी होकर अधिक शक्ति सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार मन को शुभ सकल्पयुक्त चेतना से भरकर जब प्राण के साथ संयुक्त कर दिया जाता है, तब उसका स्वरूप आध्यात्मिक शक्ति में परिवर्तित हो जाता है। इसका प्रभाव साधक के आन्तरिक तथा व्यावहारिक जीवन में स्पष्ट देखने में आता है।

हमारा नाभिकेन्द्र (सूर्यचक्र) प्राण का उद्गम स्थान ही नहीं, अपितु अचेतन मन के संस्कारों तथा चेतना का प्रेषण केन्द्र भी है; किन्तु साधारण मनुष्यों का यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र प्रायः सुप्तावस्था में पड़ा रहता है। अतः इसकी शक्ति का न तो उन्हें कुछ ज्ञान ही होता है और न वे इससे कुछ लाभ ही उठा पाते हैं। प्रत्येक चक्र किसी तत्त्व विशेष से सम्बन्धित एवं प्रभावित रहता है और उसको सक्रिय करने के लिये किसी विशेष रंग का ध्यान करना होता है, जैसे मणिपूरक (सूर्य-चक्र) अग्नि-तत्त्व प्रधान है और उसको जाग्रत् करने के लिये चमकीले पीतवर्ण कमल का ध्यान किया जाता है। वास्तव में लाल, पीले, नीले, हरे, बैंगनी एवं श्वेतादि रंगों का सूर्यज्योति की सप्त किरणों से सम्बन्ध है और चक्रों में उनके मानसिक ध्यानमात्र से सम्बन्धित तत्त्व में विशेष आन्दोलन होकर हमारे ज्ञान-तन्तुओं एवम् मस्तिष्क को प्रभावित करता हुआ शरीरस्थ व्यष्टि-प्राण एवं चेतना को समष्टि-प्राण तथा चेतना से जोड़ देता है। जिस प्रकार किसी विद्युत-बैटरी की शक्ति (पावर) के समाप्त हो जाने पर उसको जनरेटर से चार्ज कर शक्ति सम्पन्न कर लिया जाता है, अथवा किसी छोटे स्टोर में संग्रहीत भण्डार व्यय (खर्च) हो जाने पर, समीपस्थ किसी बड़े स्टोर से उसकी पूर्ति कर ली जाती है, उसी प्रकार विश्व में अनन्त शक्तियों के भण्डार, समष्टि प्राण से व्यष्टि प्राण के केन्द्र मणिपूरक (सूर्य-चक्र) में वांछित शक्ति को आकर्षित करके संचित किया जाना तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग भी होना सम्भव है।

भारतीय योग-साधना में कुछ विशेष ध्वनि युक्त मन्त्रों के एकाग्रतापूर्वक उच्चारण या जप करने से भी चक्रों में शक्ति को जाग्रत करने का बहुत प्राचीन विधान है। किन्तु आधुनिक युग के साधकों का मन्त्रों के उच्चारण एवं उनके अर्थ की ओर ध्यान न रहने से प्रायः उन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हो पाती है। योग-साधना में सफलता के लिये विधिपूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ नित्य-निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक माना गया है। ऊपर की पंक्तियों में चक्रों में शक्ति जाग्रत करने के सामान्य नियमों का वर्णन

किया गया है। प्रस्तुत लेख में केवल मणिपूरक (सूर्यचक्र) को जागृत करने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है। सुयोग्य साधक-बन्धु इसको ध्यानपूर्वक दो-चार बार पढ़कर इसके आशय को समझने का प्रयास करने का कष्ट करेंगे।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व एवं सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व सूर्यचक्र को जागृत करने की साधना करने का विधान है। अस्तु, किसी पवित्र एवं एकान्त स्थान में अथवा अपने दैनिक साधन-कक्ष में पद्मासन या सिंहासन से बिल्कुल सीधे बैठकर १०-२० बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास करें या नाड़ी-शोधन-प्राणायाम तीन मिनट तक करें, जिससे प्राण का सुषुम्ना नाड़ी में संचार होने लगे। तत्पश्चात् मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) को बिल्कुल सीधा रखते हुए प्रणव (ओंकार) अथवा 'सोऽहम्' मन्त्र का श्वास के साथ पाँच मिनट तक मौन जप करें। तत्पश्चात् अपने नाभिकेन्द्र के पृष्ठ भाग में मेरुदण्ड स्थित सूर्य-चक्र में पीले चमकीले रंग वाले कमल का भावात्मक ध्यान करें। इसके साथ 'जागृत रहो, जागृत रहो, सदैव जागृत रहो' शब्दों द्वारा अपने सूर्यचक्र को आटोसजेशन देते हुए अपनी चेतना को सूर्यचक्र में केन्द्रित करें। तत्पश्चात् निम्न-लिखित भावना को मन में दुहराते हुए अपने श्वास को बहुत धीरे-धीरे हृदय में तथा फेफड़ों में ले जाते हुए पेट में भर दें—

'ॐ मैं आरोग्यता, सुख, शान्ति, प्राण-शक्ति, स्फूर्ति, सफलता एवं सिद्धि के परमाणुओं को समष्टि प्रकृति के भण्डार से अपने भीतर आकर्षित कर रहा हूँ तथा सूर्यचक्र में उनका संचय एवम संग्रह हो रहा है।' दस-पाँच सैकण्ड के लिये श्वास को सूर्यचक्र में ठहरा दें। तत्पश्चात् 'मेरा प्राण ऊर्ध्वगामी होकर शरीर के समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में (व्याप्त हो गया है और उसका) प्रकाश पहुँच रहा है।' इस आटोसजेशन (भावना) के साथ श्वास को बिल्कुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ दें और सूर्यचक्र से प्राण का स्पन्दन मेरुदण्ड में ऊपर की ओर गति करता हुआ अनुभव करें। एक-दो मिनट के विश्राम के पश्चात् इसी प्रकार की क्रिया पुनः करें। इस क्रिया को पाँच बार से दस बार तक करें। श्वास अन्दर भरने तथा छोड़ने का क्रम इतने धीरे-धीरे हो कि उसकी ध्वनि न हो। सुखपूर्वक विश्रान्ति के साथ उपर्युक्त क्रिया को बार-बार दुहरावें। साथ ही आत्मनिर्देश (आटो-सजेशन) पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ दुहराना आवश्यक है। एक मास तक नियमित साधना करने के पश्चात् आपके शरीर, मन एवं मस्तिष्क में अद्भुत परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। आप अनुभव करेंगे कि आपकी भावनाओं के अनुसार आपके मन एवं बुद्धि का विकास हो रहा है। उपर्युक्त साधना ध्यान योग के द्वार की प्रथम सीढ़ी है। इस साधना द्वारा सूर्यचक्र के जागरण के साथ-साथ आपकी कुण्डलिनी शक्ति भी शनैः-शनैः जागृत होने लगेगी।

किसी भी साधन में मन की एकाग्रता, सफलता के लिये आवश्यक है। साधना के लिये निर्धारित समय तक मन में अन्य कोई विचार नहीं आना चाहिये। योग-साधना के जिज्ञासुओं के लिये, श्वास योग के अभ्यासियों

के लिए सूर्यचक्र जागरण के प्रथम सोपान पर पैर धरने के पश्चात् प्रभु-कृपा एवं सद्-गुरु के मार्ग-दर्शन से आगे का मार्ग सुलभ हो जाता है। इसकी दीर्घकालीन साधना के द्वारा आप अपने भीतर वाञ्छित गुणों एवं शक्तियों का विकास सहज में ही कर सकेंगे। इस संकल्प पूर्वक चेतना का प्राण के साथ संयोग हो जाने पर साधक के मन एवं मस्तिष्क में चुम्बकीय विद्युत् तरङ्गों का निर्बाध प्रवाह जारी हो जाता है, जो साधक के आस-पास एवं उससे सम्बन्धित समाज में उच्चतम आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ होता है। इस प्रकार के आकर्षक वातावरण का प्रभाव एवं उसकी अनुभूति हम उच्चकोटि के साधक, सन्त, महात्माओं के सान्निध्य में सहज में ही कर सकते हैं। उपर्युक्त साधना से सूर्यचक्र (मणिपूरक) एवं अनाहत-चक्र में एक सुनियोजित सीधा सम्बन्ध स्थापित होकर साधक की सर्वतोमुखी उन्नति में जो स्वैच्छिक सहयोग मिलता है, वह शीघ्र ही अपने लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर देता है। अन्त में हम कठोपनिषद् के उस मन्त्र का स्मरण करते हुए लेख का समापन करते हैं, जिसमें हमें आप्त होकर उच्चमना महापुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है।

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!! ॐ शांतिः शांतिः शांतिः !!!

सूर्य की विश्व-मान्यता

आकाश के देवता 'एना' और पृथ्वी के देवता 'इया' में निष्ठा रखने वाले बेबीलोनिया-निवासियों ने दिन का आरम्भ सूर्य से माना।

मिस्र की नीलघाटी सभ्यता में सूर्यपूजा मुख्य थी। वहाँ मन्दिरों को इस ढङ्ग से बनाया जाता था कि उसके मध्य में स्थापित मूर्ति पर उदय होते सूर्य की किरणें पड़ सकें।

फोनिशियन लोग भी सूर्य को महत्व देते थे और उन्होंने सात ग्रहों का पता लगाया था—जिनके नाम पर दिनों के नाम रखे। वे तारों की गति से भी अवगत थे।

सुमेरियन सभ्यता में चन्द्रमा को सूर्य से बड़ा माना गया। उन्होंने बारह मासों का पचाङ्ग बनाया।

फिनीशियन सूर्य-चन्द्र के उपासक थे। असीरिया वाले भी अपने ढङ्ग से सूर्य की पूजा करते थे। सूर्यपूजा सर्वत्र थी।

ऋग्वेद में सूर्य की महिमा के सूचक चौदह सूक्त हैं। सौर-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय दैनन्दिन उपासना में सूर्यपूजा अनिवार्य है।

अलौकिक योग दीक्षा

✍ श्री केवल उपाध्याय (हापासरी)

ब्रह्म में लीला सकल जिला बीकानेर के निवासी हमारे एक आदरणीय भाई बाबू श्री सुरेन्द्र सिंह जी है। उनको अलौकिक विधि से आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने सन् उन्नीस सौ तिरानवे के अक्टूबर माह में दशहरा (विजय दशमी) के पूर्व स्थूल रूप में प्रकट होकर योग दीक्षा प्रदान की है।

इस अलौकिक योग दीक्षा से पूर्व ठाकुर सुरेन्द्र सिंह जी योगीराज गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के एक सिद्ध पुरुष श्री जाहिरवीर बाबा के आश्रम से सम्बन्धित थे। उस आश्रम से (जाहिर वीर बाबा से) इनके पूर्वजों (पिता एवम् पितामह) का भी सम्बन्ध था।

जाहिर वीर बाबा का आश्रम ग्राम गुगामेड़ी जिला बीकानेर में है। जो राजस्थान प्रान्त में स्थित है। इस सिद्ध पुरुष के अनुयायी हिन्दू व मुसलमान दोनों समान रूप से है। हिन्दू साधक एवम् भक्त इस स्थान को जाहिर वीर बाबा का आश्रम कहते हैं तो मुसलमान साधक एवम् मौलवी इस स्थान को जाहिर पीर बाबा की मजार मानते हैं। किम्वदन्ती है कि इस सिद्ध पुरुष ने इस स्थान पर स्थूल रूप से अपनी इच्छानुसार समाधि ली थी। आज भी इस पवित्र स्थान की मान्यता है कि यहां श्रद्धा रखने वाले साधकों की मनोकामना पूर्ण होती है एवम् आवश्यकतानुसार दर्शन दिया करते हैं। यहां भाद्रपद महीने की नवमी को इस पंथ के अनुयायियों का बड़ा वृहद समारोह होता है एवम् भण्डारे का आनन्द लाभ करते हैं। सन् तिरानवे के इस उत्सव का लाभ उठाकर भाई सुरेन्द्र सिंह जी अपने घर वापस आये एवम् वहां से दैविक चमत्कारों से पूर्ण कुछ साहित्य भी लेकर आये थे। उन्हें ऐसा लगने लगा था कि प्रायः सदैव उसी साहित्य का अध्ययन एवम् चिन्तन किया करते थे। अगस्त तिरानवे की एक घटनाइस प्रकार घटित हुई कि भाई जी एक दिन भैंस चराकर, भैंस दुहकर एवम् स्वयं स्नान कर घर आये। भैंसों के बांधने के बाद वे अपनी गीली धोती को घर के बरामदे में सूखने के लिए टांग कर स्वयं जाहिर वीर को खुली आँखों चिन्तन करने लगे। इसमें उन्होंने देखा कि धोती पर जाहिर वीर बाबा का स्वरूप दिखाई देने लगा। वे घोड़े पर सवार थे एवं एक हाथ में घोड़े की लगाम तथा दूसरे हाथ में भाला लिए हुए थे। ठाकुर साहब ने बतलाया कि उन्हें सिनेमा जैसा चित्र दिखायी दे रहा था। इन्होंने अपनी बूढ़ी माँ को आवाज लगायी, बूढ़ी माँ तुरन्त आ गयी। इन्होंने कहा कि माँ धोती पर देखो, कुछ दिखलायी दे रहा है। माता ने कहा—बेटा! ये तो जाहिर वीर बाबा हैं। इन्होंने अपनी पत्नी एवं घर में उपस्थित बच्चों को भी दर्शन कराया। सभी लोगों ने बड़ी श्रद्धा प्रेम से इस दृश्य को प्रणाम किया एवं लगभग दस मिनट बाद यह दृश्य आंखों से ओझल हो गया। इस घटना के बाद भाई

सुरेन्द्रसिंह जी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामबेटी जी को महान आध्यात्मिक जिज्ञासा पैदा हो गयी। पत्नी ने बार-बार कहना आरम्भ किया कि हमें इसी प्रकार का कोई सिद्ध योगीराज मिल जाय तो लोक एवं परलोक दोनों ही बन जायें, वरना यह जीवन तो व्यर्थ ही चला जायेगा।

अब ठाकुर सुरेन्द्र सिंह जी के परिवार के सम्बन्ध में कुछ बातें यहीं स्पष्ट कर देना समीचीन होगा। ठाकुर सुरेन्द्र सिंह के परिवार में कुल सदस्यों की संख्या पाँच है। ठाकुर श्री सुरेन्द्र सिंह जी, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामबेटी, उनके चार पुत्र एवं एक पुत्री तथा उनकी आदरणीया माताजी हैं। ये अच्छे गृहस्थ हैं एवं खेतीबारी ही इनके जीवन का मुख्य साधन है।

इनकी धर्मपत्नी ने बार-बार यह कहना आरम्भ किया कि आप किसी योग्य सामर्थवान गुरु की खोज करें ताकि हम लोग उनसे योग-दीक्षा लेकर लोक-परलोक दोनों को धन्य कर सकें। इनके मन में योग्य गुरु की तलाश आरम्भ हो गयी। संयोग कुछ इस प्रकार का बना कि हमारे आदरणीय, परम-विनीत गुरु श्री गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में अनन्य श्रद्धाभाव रखने वाले एक निष्ठ सेवक एवं साधक मास्टर नाथूराम शर्मा की मुलाकात भाई श्री सुरेन्द्र सिंह जी से हुई। दोनों आदमियों के घर में लगभग एक किलोमीटर का फासला है। ये गाँव छोटे-छोटे टोला टाइप के हैं। मास्टर नाथूराम जी शर्मा के गाँव में गेहूँ पीसने की मशीन नहीं है अतः वे गेहूँ पिसाने श्री सुरेन्द्र सिंह जी के गाँव में गये थे। वह आटा मशीन श्री सुरेन्द्र सिंह जी के पड़ोसी के यहाँ थी। मास्टर नाथूराम जी जब आटा लेकर चले तो भाई जी ने उनकी साइकिल के पीछे का कैरियर पकड़ लिया एवं कहा कि पण्डित जी आपसे कुछ बात करनी है। मास्टर साहब ने कहा कि कहो ठाकुर साहब क्या बात है। भाई श्री सुरेन्द्र सिंह जी ने मास्टर साहब को बतलाया कि भाई जी हमारी पत्नी बार-बार यह कहती है कि किसी योग्य सामर्थवान गुरु की खोज करो ताकि उनसे मन्त्र लिया जाय। पण्डित जी आपके गुरुदेव जी भी तो पूर्ण योगी हैं, ऐसा हमने सुना है। उनकी बात समाप्त होते ही मास्टर नाथूराम जी बोले—अरे भाई! हमारे गुरुदेव तो पूर्ण योगेश्वर एवं सर्वसमर्थ सिद्ध पुरुष हैं। इसमें सन्देह की रंचमात्र भी गुञ्जायश नहीं है, परन्तु क्या बतलाऊँ २५ जून सन् १९९० को अपना लीलासंवरण कर लिया है। अब वे स्थूल रूप से इस संसार में उपस्थित नहीं हैं। अब अहैतुकी कृपा के दाता से स्थूल दीक्षा प्राप्त करना तो कठिन-सा ही है। मास्टर साहब की बात सुनकर ठाकुर सुरेन्द्र सिंह निराश से हो गए एवं अविरल अश्रु-धारा प्रवाह आरम्भ हो गयी। उनकी हिचकी-सी बँध गयी एवं उन्होंने सिसकते हुए स्वर में कहा कि पण्डित जी अब तो इस जन्म में मेरा कल्याण नहीं होगा। इतना कहने के बाद वे जोर-जोर से रोने लगे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर मास्टर साहब के मन में दया आयी एवं श्री प्रभुजी के सर्व-समर्थ होने का भाव कण्ठ-सा गया। उन्होंने कहा कि ठाकुर साहब ऐसी क्या बात है। यदि आपकी श्रद्धा एवं लगन पूरी है तो हमारे श्री प्रभुजी आपको कृतार्थ करेंगे। उन्होंने कहा कि इसके लिए हमें क्या करना होगा। मास्टर साहब ने कहा कि आप हमारे घर सायंकाल पधारने का कष्ट करें।

मास्टर साहब आटा लेकर घर पहुँचे एवं उसके कुछ समय पश्चात ठाकुर सुरेन्द्र सिंह भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा कि मास्टर साहब अब आप उपाय बतलाओ। मास्टर साहब ने बड़ी ही श्रद्धा के साथ श्री गुरुदेव भगवान को एक स्वरूप प्रणाम कर उनको दिया, साथ में आरती की एक किताब भी दी एवं आरती का विधान समझाया एवं कहा कि सुबह-शाम नियम से आरती किया करो एवं पञ्चाक्षरी मन्त्र का सदैव चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम जाप किया करो। वह हमारे गुरुदेव हम लोगों को आदेश दिया करते थे। ठाकुर साहब ने उत्कण्ठा प्रदर्शन किया कि पण्डित जी यदि हम ऐसा करें तो क्या आपके गुरुदेव प्रकट होकर हमें दीक्षा देंगे? मास्टर साहब ने कहा कि हाँ ठाकुर साहब यदि आप ऐसा करेंगे तो वे कृपासागर अवश्य-अवश्य आपकी मनोकामना पूर्ण करेंगे। मास्टर साधूराम के ऐसा कहने पर ठाकुर सुरेन्द्र सिंह ने कहा कि अब तो मैं आज से ही आपके द्वारा बतलाये गए रास्ते से साधना आरम्भ कर रहा हूँ। प्रगाढ़ लगन, अनन्य श्रद्धा एवं एकनिष्ठ भक्ति से उन्होंने दोनों समय विधि-विधान से आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव भगवान का आरती-पूजन आरम्भ किया। चलते-फिरते, उठते-बैठते सदैव उनका ही मन्त्र जाप एवं चिन्तन करने लगे। योग महामेला (श्री महाप्रभुजी का जन्मोत्सव) में श्री सद्गुरुदेव भगवान के स्थूल शरीर का दर्शन-लाभ तो इसके पूर्व भी उन्होंने सन् १९८५ के योग महामेला में किया था परन्तु उस समय इनके मन में गुरुदेव भगवान के प्रति एक साधारण महन्त के भाव थे। एक सिद्ध योगीराज के नहीं। इस समय इनके मन के भाव उस समय से बिल्कुल विपरीत थे। इस समय इनके मन में वही भाव थे जो एक आस्तिक साधक अपने ईश्वर या आराध्य के प्रति रखता है। इसी भावना के साथ इन्होंने चार पाँच या छः महीने साधना की, कि एक घटना घटी। जो इस सिद्धान्त को परिपूर्ण करती है—

मन्त्रे-तीर्थे द्विजे-देवे,
दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशि भावना यस्य,
सिद्धिर्भवति तादृशि॥

अर्थात् मन्त्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ईश्वर को जानने वाले में, दवा में एवं गुरुदेव भगवान में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है।

मास्टर साधूराम जी अपने घर से आश्रम आये थे एवं आश्रम से एलादपुर जा रहे थे कि रास्ते में हमारे एक ध्यानी गुरुभाई मिले एवं उन्होंने जय गुरुदेव के बाद मास्टर जी से कहा कि मैं आपको परसों से ही खोज रहा हूँ। भाई जी, बात ऐसी है कि परसों सद्गुरुदेव भगवान ने ध्यान में हमको आदेश दिया कि लल्ला! साधूराम तो एक मित्र गुरुदीक्षा के लिये अनवरत साधनारत है। मैं उसे दीक्षा देना चाहता हूँ। तुम साधूराम से कह दो कि वह अपने मित्र से कह दे कि वह अगला शुभ दिन देखकर दीक्षा का सामान लेकर एक दिन पूर्व सवाई आश्रम आ जाय। मैं उसके शुभ दिन को प्रातःकाल चार बजे गुरुमन्त्र प्रदान करूँगा। लेकिन इस कार्य में तीन नियमों का पालन करना पड़ेगा। पहली—यह बात किसी को बतलायी नहीं जाय। दूसरी दीक्षा के दिन चार बजे से पूर्व गुफा में प्रवेश कर जाय। तीसरी शर्त यह है कि हमारी कोई बालक गुफा में विराजमान स्वरूपों का पूजन एवं मान्यार्पण उससे करा-

कर चार बजे गुफा से बाहर निकल आये। चार बजे से साढ़े चार बजे तक गुफा में कोई प्रवेश न करे। हमारे ध्यानी गुरुभाई ने प्रार्थना की कि प्रभो! नाथूराम से मेरी मुलाकात कैसे होगी? आराध्यदेव ने आदेश दिया कि सुनो! परसों शाम तक नाथूराम तुमको अवश्य ही मिल जावेगा। भाईजी मैं परसों से ही आपका इन्तजार कर रहा हूँ।

उपरोक्त वार्तालाप सुनकर मास्टर नाथूराम की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी एवं उन्होंने आराध्यदेव को बार-बार मन ही मन प्रणाम किया एवं सामने उपस्थित ध्यानी गुरुभाई को बार-बार जय गुरुदेव कहा। (हमारे ये आदरणीय ध्यानी गुरुभाई जी सवाई धाम के करीब के ही एक गाँव के निवासी हैं एवं उन्होंने बारम्बार अनुरोध किया कि उनका नाम प्रकाशित न किया जाय) इसके पश्चात् मास्टर नाथूराम जी ने ऐरावतपुर जाने का विचार छोड़ दिया एवं रास्ते में से लौटकर गुफा को प्रणाम करते हुए अपने मित्र के घर पहुँच गये। ठाकुर सुरेन्द्रसिंह से उचित अभिवादन के बाद नाथूराम जी ने बतलाया कि भाईजी आपकी मनोकामना अब अवश्य-अवश्य पूर्ण होगी। इतना कहकर वे उनको लेकर एकान्त स्थान में चले गये और पूरी घटना को सविस्तार सुनाया। मंगलवार का दिन ठाकुर साहब के लिये शुभ था अतः सोमवार को ही वे करीब पाँच सौ रुपये लेकर नाथूराम जी के साथ ऐरावतपुर गये एवं दीक्षा का सारा सामान लेकर सायंकाल सवाई धाम आ गये। दीक्षा के पूर्ण सामान के साथ एक नवागन्तुक को मास्टर नाथूराम के साथ आता हुआ देखकर आश्रम निवासी हमारे आदरणीय ब्रह्मचारी एवम् गृहस्थ साधकों ने शिष्य (चेला) बनाने का प्रयास किया। जो प्रहसन का विषय बन गया।

यह घटना गुरुपूर्णिमा के एक सप्ताह बाद की है। रात्रि को करीब साढ़े नौ बजे मास्टर नाथूराम जी, आदरणीय भाई रामाश्रय जी के पास गये और प्रार्थना की कि भाई जी गुफा की चाबी हमें दे दीजिये। हमें प्रातः साढ़े तीन बजे पूजा करनी है। उन्होंने कहा कि चार बजे से पूर्व गुफा का दरवाजा नहीं खुलेगा। मास्टर जी ने गुरुदेव भगवान की भविष्य वाणी को बिना बतलाये गुफा का दरवाजा चार बजे से पूर्व खुलवाने या गुफा की चाबी लेने की पूरी कोशिश की, परन्तु वे सफल नहीं हो सके। अन्त में हारकर उन्हें तथ्य समझाना ही पड़ा। गुरुदेव की भविष्यवाणी को सुनकर भाई रामाश्रय जी ने सहर्ष सब स्वीकार कर लिया परन्तु यह बात सबको बतला दी। मंगलवार को चार बजे से पूर्व ही भाई रामाश्रयजी ने ठाकुर साहब से गुफा में उपस्थित स्वरूपों का आरती-पूजन एवं माल्यार्पण करा दिया। माल्यार्पण कराकर रामाश्रय जी सुबह ४ बजे गुफा का दरवाजा लगाकर बाहर आ गये। आश्रम में उपस्थित लगभग सभी गुरुभाई-बहन भी उसी समय स्नान आदि करके इस रहस्य को देखने व समझने कौतुहलवश उपस्थित थे। प्रातः चार बजे से करीब ७ बजे का समय हो गया परन्तु दीक्षा नहीं हुई। सात बजे ठाकुर साहब को मास्टर साहब ने आवाज लगायी, क्यों भाई कुछ हुआ, नहीं पण्डित जी कुछ नहीं हुआ। अच्छा बाहर आ जाओ। ठाकुर सुरेन्द्र सिंह

जी बाहर आ गये। उन्होंने कहा कि मास्टर साहब आपने तो कहा था कि सच्चा दरबार है, क्या सच्चे दरबार में यही होता है? ठाकुर सुरेन्द्र सिंह ने बड़े ही उदास एवम् निराश मन से ये बातें कहीं एवम् कहा कि मैं तो बड़ा ही आसरा लेकर आया था।

अन्त में सुरेन्द्र सिंह ने कहा कि चलो पण्डित जी घर चला जाय। श्री ताजूराम जी ने कहा कि भाई आप चले जाओ, मैं दो-चार दिन बाद आऊँगा। उन्होंने साथ चलने को कई बार आग्रह किया परन्तु मास्टर साहब ने इन्कार कर दिया। ठाकुर सुरेन्द्र सिंह ने कहा कि पण्डित जी आप साथ नहीं चल रहे हो तो पाँच रुपया हमें उधार दे दो, क्योंकि मेरे पास बिल्कुल पैसे नहीं हैं एवम् साइकिल में यदि कोई गड़बड़ी आगई तो समस्या खड़ी हो जावेगी। मास्टर साहब ने उन्हें पाँच रुपये दे दिये। पाँच रुपये व श्री रामाश्रय भाई द्वारा प्रसाद में प्राप्त एक दर्जन केले लेकर वे अपने गाँव के लिये साइकिल से प्रस्थान कर गये। इनका गाँव सवाई ग्राम से लगभग बीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उनके मन में अत्यधिक निराशा थी एवम् बार-बार यह भाव आ रहा था कि पण्डित जी ने हमसे छल किया है। यह तो महान् पाखण्ड का आश्रम है। हमसे ही गलती हुई कि हमने जाहिर बीर बाबा की पूजा को छोड़कर पण्डित जी की बातों पर विश्वास किया एवम् खूब अच्छी प्रकार से लोक एवं परलोक दोनों को बिगाड़ लिया। अब तो मैं घर का रहा न घाट का। इन्हीं विचारों में डूबते-उतरते वे अपने गाँव से लगभग तीन किलोमीटर दूर रह गये थे, वहाँ से आगे एक तिराहा पड़ता है एवं तिराहे पर भगवान शंकर का एक बहुत पुराना मन्दिर स्थित है।

जब ठाकुर साहब तिराहे से दो फर्लांग दूर थे तो उन्होंने देखा कि मन्दिर में से एक आदमी साइकिल पर सवार होकर बड़ी तीव्र गति से चलकर इनकी तरफ आ रहे हैं। उन्होंने करीब आकर अपनी साइकिल का दाहिना हिस्सा इनकी साइकिल के हैंडिल के बाँये हिस्से से सटा दिया एवं बाँया पैर जमीन पर रखकर खड़े हो गये। ठाकुर साहब ने भी अपना दाहिना पैर जमीन से लगा लिया। आश्चर्य! महान् आश्चर्य!! ये तो श्री सिद्धगुफा के बाबा योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हैं। इसके आगे श्री सुरेन्द्रसिंह कुछ सोचें इसके पूर्व ही गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! तुम दीक्षा लेने की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे हो। ध्यान से गुरु मन्त्र सुनो। उन्होंने तीन बार गुरुमन्त्र का उच्चारण किया एवं कहा कि लल्ला! प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक अवश्य ही इसका जाप करना। दाहिने हाथ से अभय मुद्रा का आशीर्वाद दिया एवं अपनी मनोहर मुस्कान बिखेरते हुये चलते बने। जब गुरुदेव इनके पाँचे करीब एवं फर्लांग निकल गये तो ठाकुर साहब ने सोचा कि मैंने यह स्वप्न देखा या हकीकत है। फिर ठाकुर साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो गुरुदेव जा रहे हैं। उन्होंने आवाज लगायी, गुरुदेव, हे गुरुदेव! श्री गुरुदेव भगवान साइकिल पर बैठे-बैठे ही बोले—लल्ला! क्या बात है? उन्होंने कहा कि गुरुदेव मन्त्र एक बार फिर बतलाने की कृपा करें। ठाकुर साहब ने बतलाया कि गुरुजी ने वहीं से मन्त्र बतलाया और वह उतना ही तेज सुनायी दे रहा था, जितना कि बुलन्द आवाज गुरुजी की नजदीक थी।

इन्होंने कहा कि प्रभो! मैं आपका चरण कमल स्पर्श करना चाहता हूँ। गुरुजी ने आवाज लगाई, ठीक है लल्ला! फिर कभी एवम् अपना वरदहस्त उठाकर आशीर्वाद दिया और कहा कि लल्ला! हमारा पूर्ण पूर्ण आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। सूर्यदेव भगवान के हाथों से सर्च लाइट की तरह प्रकाश दिन में निकलकर इनके शरीर पर पड़ रहा था। इसके पश्चात् गुरुदेव तीव्र गति से आगे निकल गये। ठाकुर सुरेन्द्र सिंह ने यह बातें गद्गद् कण्ठ से अपने गाँव वालों एवम् अपने परिवार के सदस्यों को जाकर बतलायी। आज इनका जीवन धन्य है एवं अपनी शक्ति और सामर्थ्य के साथ तन, मन और धन से आश्रम की सेवा करते हैं। धन्य है प्रभु की अहैतुकी कृपा। ★

गुरु कुम्हार—शिष्य कुम्भ

(पृष्ठ १६ का शेष)

पर बहाना पड़ता है और यही गुरु की माया का भी रहस्य है जिसके द्वारा वे अपने शिष्य के जीवन को सहज व सुगम बनाते हैं। शिष्य जितना अधिक गुरु सान्निध्य में ऐसा परिश्रम कर लेता है, सांसारिक कुचक्रों से उतना ही कम प्रभावित होता है।

गुरु द्वारा माया का आवरण बनाये रखना बेहद जरूरी भी है। यदि वे माया का आवरण बनाकर न रखें, लोगों को भ्रम में न डाले रखें तो उनके पास इतना अधिक कोलाहल व लोगों की भीड़ एकत्र हो जाएगी कि वे सकारात्मक कार्य कर ही नहीं पायेंगे। वास्तव में जो गुरु होते हैं वे अपने चारों ओर निरन्तर माया का आवरण बनाकर रखते हैं जिससे बुद्धिवादी, तर्क-कुतर्क करने वाले, स्वार्थी व ओछे व्यक्ति उनसे दूर ही रहें। केवल वही लोग उनके समीप आ पाये जो वास्तव में जीवन को दांव पर लगाने की क्षमता रखते हों क्योंकि शिष्य का अपना अस्तित्व रह ही नहीं जाता और जिसका अस्तित्व अंश मात्र भी बच जाये वह शिष्य बन ही नहीं सकता। शिष्य एक प्रकार से गुरु के पूरे व्यक्तित्व को पी जाता है। अपने रोम-रोम, चक्र, जिह्वा, हृदय, चैतन्यता, प्रेम और तीव्रता सभी में उन्हीं का प्रतिरूप बन जाता है जिससे जीवन का पुण्य कार्य हो सके, गुरु का गौरववर्धन हो सके।

यह कहना भी एक आत्म प्रवञ्चना है कि गुरु हम पर माया का आवरण डाल रहे हैं। यह तो एक स्थिति मात्र है क्योंकि इस आवरण के पीछे गुरु का छलछलाता हुआ हृदय भी है। जो जितना माया का आवरण डाल रहा है वह उतना ही व्यथित भी हो रहा है। शिष्य जब तक पूर्ण नहीं होता, वे निरन्तर उसे विरोधी परिस्थितियों में डालते ही रहते हैं। वे जानते हैं कि इस शिष्य में अब काम नहीं है, क्रोध नहीं है, लालच नहीं है, इसकी क्षुधायें समाप्त हो गई हैं, इसमें तृष्णा और मोह भी नहीं बचा है फिर भी वे निरन्तर तपाते ही रहते हैं।

सुनार जब सोने को तपाता है तो वह जानता है कि यह सोना ही है, किन्तु उसे वह उस स्थिति तक ले जाकर तपाता है जब तक वह शुद्ध खरे चौबीस कैरेट का न हो जाये। जौहरी जानता है कि यह बेडौल पत्थर वास्तव में हीरा है लेकिन तब तक उसको कड़ी घिसाई में डाले रखते हैं जब तक उसकी फलक से सतरंगी किरणें न फूटने लग जायें क्योंकि ऐसे ही हीरे और स्वर्ण से मिलकर मुकुट बनते हैं। ★

★★ श्री गुरुदेव भगवान की कृपा ★★

* श्री रमाकान्त उर्फ कन्हैयालाल उपाध्याय (वाराणसी)

आज के भौतिकवादी युग में लोगों के मतानुसार चमत्कार कम ही होते हैं। परन्तु हमारे आपके प्राणीमात्र के भाग्य विधाता, अकारण दयालु, योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज एवं सद्गुरुदेव भगवान योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में ऐसे चमत्कार रोज ही अनेकों की संख्या में घटित होते रहते हैं। दादा गुरुदेव एवम् गुरुदेव भगवान के कमलवत चरणों में घटित ऐसी ही एक घटना का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है। यह घटनाक्रम हमारी एक आदरणीय गुरु बहिन श्रीमती चम्पादेवी से सम्बन्धित है जो भगवान शंकर जी की पावन नगरी काशी की रहने वाली हैं। इस घटना को सुनाने वाले हमारे वरिष्ठ, आदरणीय गुरुभाई एवं गुरुदेव भगवान् के अत्यन्त कृपापात्र शिष्य श्री आत्माप्रसाद सिंह जी को बार-बार साधुवाद देते हुए, श्री सिद्धयोग के सुयोग्य पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे इस लेख की त्रुटियों को क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

घटनाक्रम सन् १९७८ के आसपास का है। उस समय श्रीमती चम्पादेवी श्री चरणों से दीक्षित नहीं हुई थीं। इनके पति का सम्बन्ध किसी दूसरी औरत से हो गया था। चूंकि श्रीमती चम्पादेवी एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं, अतः ये हमारे वरिष्ठ एवम् आदरणीय गुरुभाई श्री आत्माप्रसाद सिंह जी के यहां होने वाले प्रत्येक बृहस्पतिवार के आध्यात्मिक सत्संग में आया करती थीं। श्री आत्माप्रसाद सिंह जी (वाराणसी) से लगभग सभी पाठक परिचित हैं जो कि पेशे से वकील हैं। इनकी धर्मपत्नी द्वारा श्री प्रभु जी एवं गुरु जी की अलौकिक चमत्कारिक घटनाओं को सुनकर श्रीमती चम्पादेवी अपने कुछ मनोरथों की सिद्धि के लिये नियमित चलने वाले सत्संग में आया करती थीं। इन्होंने सुन रखा था कि श्री प्रभुजी की कृपा से अनेक संसारी लोगों के असम्भव काम सम्भव हो गये हैं। कुछ समय पश्चात् सरकार ऐसा बना कि हमारी आदरणीय गुरु बहिन जी क्षय रोग (टी० बी०) से पीड़ित हो गईं। उन्होंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार खूब दवा कराई परन्तु रोग घटने के बजाय बढ़ता ही गया। जब रोग डाक्टरों के इलाज के परे हो गया तब उन्होंने इनके रोग को लाइलाज घोषित कर दिया। एक तो पति द्वारा उपेक्षित, दूसरी क्षय रोग से लाइलाज घोषित होने के कारण श्रीमती चम्पादेवी कुछ घबरा-सी गयीं।

उन दिनों आराध्यदेव जी का वाराणसी का योग-प्रचार कार्यक्रम वाराणसी नगर के

नगवां मुहल्ले में आदरणीय गुरुभाई श्री ऋषिराम शर्मा के यहां हुआ करता था। उसी समय संयोग कुछ ऐसा बना कि जिस समय इस महिला पर ये दोनों विपदायें पड़ी थीं उसी समय वाराणसी के कार्यक्रम की सूचना उसे मिल गई। श्री प्रभुजी के आगमन की सूचना पाकर वह बेहद प्रसन्न हुई एवम् इन्तजार के दिन उंगली पर गिन-गिनकर काटने लगी। आखिर वह दिन आ ही गया जब आराध्यदेव जी योग का प्रचार एवम् प्रसार करने भगवान शंकर जी की नगरी में डाक्टर श्री ऋषिराम शर्मा के यहां पधारे। उस समय श्रीमती चम्पादेवी शारीरिक एवं कुछ दैवी आपदा के कारण चाहकर भी चार दिन तक श्री प्रभुजी के दर्शन न कर सकीं, परन्तु पांचवे दिन वह पैदल चलकर अपने घर से नगवां भाई श्री ऋषिराम जी शर्मा के यहां पहुंचीं, जहां श्री प्रभुजी के आगमन की सूचना उन्हें मिली थी। जिस समय वह उस स्थान पर पहुँची, उस समय श्री प्रभुजी का सामान बंधकर अन्यत्र जाने के लिये चला गया था एवम् श्री प्रभुजी अगले योग-प्रचार कार्यक्रम में जाने के लिए कार में विराजमान हो गये थे तथा वहां उपस्थित गुरुभाई-बहन जयकारा लगा रहे थे। श्री प्रभुजी की यह अवस्था देखकर उस महिला के मन में यह भावना आई कि शायद प्रभु कृपा आज मेरे ऊपर नहीं हो पायेगी क्योंकि उसने श्री प्रभु जी को प्रथम बार ही देखा था एवम् उसे अपना कोई परिचित नहीं दिखलाई दे रहा था। इतने में उसे हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री आत्मप्रसाद सिंह जी की सहधर्मिणी जी दिखलाई दीं। उसने घबराकर वकील साहब की धर्मपत्नी से निवेदन किया कि—बहिन जी! आप श्री प्रभुजी से जल्दी से हमें पुष्प प्रसाद दिला दीजिये वरना गुरुजी चले जायेंगे। श्रीमती चम्पादेवी की अन्तर्भावना से की गई प्रार्थना एवम् दुःखों को अच्छी प्रकार से जानते हुए उन्होंने श्री प्रभुजी से उसके दुःख-दर्द का निवेदन संक्षेप में कर दिया। जिस समय वकील साहब की पत्नी उसके दुःख-दर्द की कहानी श्री प्रभुजी को सुना रही थीं उस समय श्रीमती चम्पादेवी श्री प्रभुजी के चरण-कमल पकड़कर फूट-फूट कर रो रही थी। उसका दुखड़ा सुनने के पश्चात् श्री प्रभुजी ने उसे चुप कराकर पुष्प का प्रसाद दिया एवम् अपने सहज स्वभाव से कहा कि—लल्ली! पुष्प प्रसाद खाकर श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का स्मरण करो, सब ठीक हो जायेगा, घबराने की कोई बात नहीं।

उस महिला ने उस प्रसाद को तत्काल खा लिया एवं नियम से वकील साहब के यहां होने वाले सत्संग में शामिल होती रही तथा वकील साहब की धर्मपत्नी से भी आराध्य देव जी एवम् महाप्रभुजी के कृपा चरित्रों को सप्रेम सुनती रही। उसने अपने क्षयरोग का इलाज जिसे डाक्टरों ने लाइलाज घोषित कर दिया था पुनः आरम्भ किया एवं करीब एक महीने तक इलाज कराने के पश्चात् जब उसने अपने रोग की जांच कराई तो उसका इलाज कर रहे डाक्टर को महान आश्चर्य हुआ एवं उसने कहा कि—इस प्रकार क्षय रोग का एक माह में ठीक होना हमने अपनी

जिन्दगी में पहले कभी नहीं देखा और अब आप एक माह और दवा कराकर दवा बन्द कर दीजिये।

अब श्रीमती चम्पादेवी का असर रोग तो ठीक हो गया था परन्तु उसका दूसरा रोग अभी बाकी था और वह था उसके पति का दूसरी औरत के साथ गलत सम्बन्ध। इसका पति दूसरे मुहल्ले में रहने वाली उस औरत के घर चला जाता एवं अपनी नौकरी के बाद बचे दिन का ज्यादा समय वह उस औरत के साथ ही बिताता था। श्रीमती चम्पादेवी अपने इस दुःख के कारण कुछ ज्यादा ही परेशान रहती थी। अतः इन्होंने श्री चरणों में विधिवत योग दीक्षा ग्रहण करली एवं विधि विधान से श्री प्रभुजी के चरण कमलों का चिन्तन करते हुए आरती-पूजन करने लगी। एक बार इनके मन में यह भाव आया कि यदि श्री प्रभुजी उस औरत से हमारे पति का सम्बन्ध छुड़ा देते तो बड़ा अच्छा होता। इसी समय एक दिन एक घटना घटित हो गई। श्रीमती चम्पादेवी का पति जब उस औरत के घर गया और उसके साथ कुछ समय बिताकर उस औरत को लेकर मार्केटिंग करने के लिए बाजार जाने वाला था तभी उस औरत तथा चम्पादेवी के पति में गारण्टी हो गई और उस औरत के पति ने चम्पादेवी के पति से कहा कि—अगर तुम फिर हमारे घर आये तो मैं तुम्हारा पैर काट लूंगा। अतः भयवश चम्पादेवी के पति ने उस औरत के घर जाना छोड़ दिया लेकिन अब वह औरत ही समय मिलने पर चम्पादेवी के घर आ जाया करती थी। एक दिन श्रीमती चम्पादेवी ने यह बात वकील साहब की पत्नी को बतायी। तब वकील साहब की धर्मपत्नी ने कहा कि तुम उस औरत से कह दो कि अगर वह तुम्हारे घर आयेगी तो ठीक नहीं होगा। चम्पादेवी ने यह बात उस औरत से कह दी। इसके पश्चात् उस औरत का चम्पादेवी के घर आना-जाना बन्द हो गया परन्तु चम्पादेवी के पति एवं उस औरत ने एक नया उपाय सोच लिया था। अब दोनों साथ प्रोग्राम बनाकर किसी तीसरे स्थान पर मिला करते थे। यह अपने घर से जाता तथा वह अपने घर से आती थी। इस प्रकार इन दोनों का कार्यक्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। इसी बीच एक दिन चम्पादेवी का पति तथा वह औरत जब रिक्शे में बैठकर कहीं जा रहे थे कि सभी रिक्शा सड़क पर बने मेनहोल में गिर गया। इस दुर्घटना में उस औरत को काफी चोट आयी, उसके आगे के कई दांत टूट गये, जिससे उस औरत का चेहरा खराब हो गया। लेकिन चम्पादेवी के पुण्य प्रताप से उसके पति को ज्यादा चोट नहीं आयी थी, और वह कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया। इस दुर्घटना के पश्चात् वह औरत काफी दिनों तक अस्पताल में भर्ती रही और अन्त में वह इस दुनिया से चल बसी। उस औरत के वियोग में चम्पादेवी का पति बहुत दुःखित रहने लगा तथा चम्पादेवी के साथ भी बुरा व्यवहार करता था। वह अक्सर चम्पादेवी को मारता-पीटता तथा चम्पादेवी के प्रति अपशब्द वाक्यों का प्रयोग करता था। वह अक्सर कहता कि तुम क्रिश्चियन के यहां मत जाया करो तथा अपने इस अरभू-परभू को हमारे घर से बाहर करो वरना हम इन्हें फेंक देंगे।

एक दिन ऐसा संयोग बना कि श्रीमती चम्पादेवी वकील साहब के यहां सत्संग में चली गई तथा इसी बीच उसका पति नौकरी से वापस आ गया। जब उसने देखा कि घर में कोई नहीं है तब उसने श्री गुरुजी तथा श्री महाप्रभु जी के स्वरूप को उठाकर घर

से बाहर फेंकने की बात सोची। ज्योंही वह स्वरूप को उठाकर फेंकने वाला था उसी समय श्रीमती चम्पादेवी ने घर में प्रवेश किया। उसने जब देखा कि उसका पति श्री गुरुजी और श्री महाप्रभुजी को फेंकने जा रहा है तो उसे बहुत गुस्सा आया और उसने कहा कि खबरदार, यदि हमारे गुरुजी एवं महाप्रभुजी को कुछ किया तो, इन्हें जहां से उठाया है वहीं यथास्थान वापस रख दीजिये, वरना वही कार्य जो आप हमारे साथ करते हैं, मैं आपके साथ अभी करना आरम्भ कर दूंगी। इस समय इसके बच्चे भी इसका साथ दे रहे थे एवं अन्दर से कुछ भीतरी शक्ति भी कार्य कर रही थी। चम्पादेवी के इस रुख को देखकर उसका पति भयभीत हो गया एवं उसने स्वरूपों को यथास्थान रख दिया। उसने स्वरूपों को रख तो दिया परन्तु कहा कि आज तो तुम्हारे गुरुजी और महाप्रभु जी को हमने रख दिया परन्तु एक दिन हम इन्हें जरूर बाहर फेंक देंगे। तब चम्पादेवी ने कहा कि—यदि ऐसा विचार करोगे तो उसका फल स्वयं पा जाओगे।

इसके अगले ही दिन जब उसका पति नौकरी पर गया तब वहीं एक पत्थर का वजनी टुकड़ा उसके पैर पर गिर पड़ा एवम् उसके पैर में काफी चोट आई जिसके कारण वह लँगड़ा हो गया। उसने अस्पताल में भर्ती होकर दवा करानी आरम्भ कर दी, परन्तु घाव सूखने के बजाय बढ़ता ही गया एवं इसी घाव के कारण एक दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर उसके बच्चे को नौकरी मिल गयी।

इस समय चम्पादेवी अपने बच्चों के साथ स्वस्थ, प्रसन्न एवं आनन्दपूर्वक है। चम्पादेवी के बच्चे उनका बड़ा ही आदर-सत्कार करते हैं। चम्पादेवी अब श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में अनन्य प्रेम तथा श्रद्धा के साथ आरती-पूजन किया करती है। इस प्रकार श्री प्रभुजी ने अपने पुण्य प्रसाद द्वारा उसके कष्ट का निवारण करके उसे परम आनन्द प्रदान किया। इस समय श्रीमती चम्पादेवी श्री प्रभु कृपा से अपनी योगाभ्यास साधना का अभ्यास कर रही है। अब यह चरित्र समाप्त होता है। अब हम इस घटना को सप्रेम सुनाने वाले वकील दम्पत्ति को एकबार पुनः सादर साधुवाद देते हुए इस लेख को यहीं विश्राम देने जा रहे हैं। आशा है हमारे सहयोगी भाई-बहन लेखनी की त्रुटियों में ध्यान न देकर उसमें वर्णित श्री प्रभु-कृपा के आनन्द का आनन्द लाभ लेंगे।

साधु-जीवन

★ साधु-जीवन से ही आत्म-शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। यही इहलोक और परलोक दोनों का साधन है। साधु-जीवन का अर्थ है सरल और अहिंसामय जीवन, सम्पूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नहीं बन सकता; धर्म की जड़ तो त्याग में ही है।

मन ही साधन है

श्री चक्रपाणि

साधन की अपेक्षा साधक को होती है, साधक की अपेक्षा साध्य को होती है। अर्थात् पहले साध्य, पीछे साधक और तब साधन। साध्य कोई वस्तु साधक के पहले से है, साधक उसीकी इच्छा करता है और उसकी यह इच्छा करना ही साधन बनता है। इष्ट (जिसकी हम इच्छा करते हैं) साध्य है, इच्छा साधन है और साधक इन दोनों का संयोजक है। यह साधक कौन है, जो साध्य की इच्छा करता है?

यह मन है, जिसकी इच्छा ही उसकी गति है। हम जो चाहते हैं, वही तो करते हैं, और वही तो होता है। संसार में क्या हो रहा है? युद्ध। युद्ध ही सही। पर क्या यह हमारी इच्छाओं का ही संघर्ष नहीं है? जगत् में जितने जीव हैं, सब किसी-न-किसी वस्तु को पाने की इच्छा करते हैं और वे इच्छाएँ एक-दूसरे से टकराती हैं—यही संघर्ष है, यही युद्ध है। संसार में युद्ध न हो, यह भी एक इच्छा है और वह कभी युद्ध की इच्छा को दबाती और कभी स्वयं उससे दबती है। इसलिये संसार में शान्ति और युद्ध दोनों ही बने रहते हैं। यदि कहीं ऐसा हो जाय कि कोई जीव कोई इच्छा ही न करे तो युद्ध असम्भव है। पर क्या कभी ऐसा हो सकता है? हम अपनी ही बात को देखें तो यह कहना पड़ेगा कि एक क्षण भी हमारा ऐसा नहीं बीतता, जब हम किसी इच्छा के वश में न हों। प्रत्येक क्षण हम अपनी इच्छा के पीछे चल रहे हैं। ये इच्छाएँ (हमारी अपनी ही) कभी-कभी इतनी परस्पर विरोधिनी होती हैं कि इच्छा के उदयकाल में तो हमें उनके परस्पर विरोधी फलों का अनुमान नहीं होता, पर फलोदयकाल में वे फल इतने परस्पर विरुद्ध होते हैं कि हम घबरा जाते हैं कि यह क्या हो रहा है। ऐसा मालूम होता है कि हमने ऐसी विकट संघर्षमय परिस्थिति की तो कभी इच्छा नहीं की थी, ईश्वर ने यह क्या कर दिया! हमने अपनी परस्पर-विरोधिनी इच्छाओं का कोई खाता नहीं रक्खा है, इसलिये हम हिसाब फैलाकर यह नहीं देख सकते कि यहाँ हमारे जिम्मे क्या देना-पावना है। पर इतना तो स्पष्ट है कि इच्छा ही हमारी पूँजी है और उसीसे उसका ब्याज बढ़ता जा रहा है और ब्याज से पूँजी भी बढ़ती जा रही है: यह एक प्रकार का साधन ही तो है, क्योंकि हम जब इच्छा करते हैं, तब किसी साध्य को पाने की ही इच्छा करते हैं और जो इच्छा करते हैं वही करते हैं, वही होता है। इस साधन को शिष्ट लोग साधन नहीं कहते, क्योंकि यह शिष्टों के विचार से मनुष्योचित साध्य का साधक नहीं, बल्कि बाधक है—बन्धन है। 'साधन' शब्द का भी प्रयोग करना हो तो हम कह सकते हैं कि यह बन्धन का साधन है, मुक्ति का नहीं। पर मुक्ति साध्य हो या बन्धन, साधक का साधन है मन ही—इसमें कोई सन्देह नहीं। कहा भी है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अच्छा तो अब यह विचारें कि मनुष्योचित सामान्य साध्य क्या है? 'सामान्य' शब्द का प्रयोग हम इसलिये करते हैं कि जितने मनुष्य हैं, उन सबकी मति भिन्न-भिन्न है और उसके अनुसार साध्य भी सबके भिन्न-भिन्न अर्थात् विशेष-विशेष हो सकते हैं। सब मनुष्यों का मनुष्य के नाते एक सामान्य साध्य है, उसी को हम मनुष्योचित सामान्य साध्य कहते हैं। यह सामान्य साध्य सब मनुष्यों का है और प्रत्येक मनुष्य का भी, इसीलिये इसे सामान्य साध्य कहते हैं। कोई मनुष्य इस सामान्य साध्य के बिना मनुष्य नहीं रह सकता, क्योंकि मनुष्य का जो सामान्य लक्षण है, वह उसमें नहीं है। यह साध्य क्या है? साध्य सदा ही इतना ऊँचा होता है कि वहाँ तक हमारे हाथ नहीं पहुँचते और पहुँचाने की हमें इच्छा होती है। अर्थात् वह अवस्था मनुष्य की सामान्य अवस्था से ऊँची होती है। इस अवस्था को हम लोग अमानव, अलौकिक अवस्था दिव्य कहते हैं। मनुष्य के नीचे की योनियों में एक ऐसी सोपान परम्परा देख पड़ती है, जिसमें प्रत्येक सोपान के जीव अपने से ऊपर के सोपान के जीवों को देखते हैं और सम्भव है उन्हीं की अवस्था को साध्य मानकर अपना जीवन उसीकी प्राप्ति में लगा देते हैं और इस क्रम से अन्त में मनुष्य योनि को प्राप्त होते हैं। पर मनुष्य योनि में आकर इसके ऊपर की योनि उतनी स्पष्ट नहीं देख पड़ती जितनी कि पशु-पक्षियों को मनुष्ययोनि देख पड़ती है। मनुष्य का अनित्य, दुःखमय लौकिक जीवन ही उसे नित्य सुखमय दिव्य योनि की सत्ता का भान कराता है। उस सत्ता को पाना ही मनुष्य का साध्य है, मनुष्य ही उसका साधक है और उसे प्राप्त करने की इच्छा करने वाला उसका मन ही उसका साधन है।

यह साधन हम कैसे करें? वह साधन क्या है?—मन। साध्य क्या है?—मनुष्य के मन की ऊपर की स्थिति। बस, उसीमें इस मन को लगा दो—साध्य में साधन को लगा दो। 'लगा दो' कहने में भी नहीं होगा। संसार में हम अपने मन को लगाते हैं, क्योंकि मनुष्य उसकी इच्छा करता है और जिसकी इच्छा करता है, उसे वह पा लेता है। कैसे? मन को लगाकर, मन को तन्मय करके, मन को उसी का सङ्कल्प और कर्म करने में प्रवृत्त करके, मन को उसीके सामने झुकाकर, उसीको साध्य मानकर साधन सहित उसका रास्ता चलकर। इसीलिये मन के ऊपर मनुष्य का जो महान् अमानव, अलौकिक अमृत आनन्दमय साध्य है, जो साधक के पहले से वहाँ स्थित है और जिसने ही वह साधन—मन मनुष्य को दे रक्खा है, उसीकी यह वाणी है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

जहाँ साध्य सामने हो, साधक का मन उत्परायण हो, वहाँ साध्य-साधक-साधना की सिद्धि में और क्या चाहिये? साधना की सीढ़ी पर जिसने पैर रक्खा, वह साधन के ऊपर साध्य का हाथ पकड़कर ही उसके समीप जा रहा है। यह साधन है मन, इसीका साध्य के साथ योग होना मनुष्य जन्म का लक्ष्य है।

महामनस्वी दधीचि का अस्थिदान

वृत्रासुर ने अमरावती पर अधिकार कर लिया था। देवता उससे युद्ध करके कैसे पार पा सकते थे। जिन अस्त्र-शस्त्रों पर देवताओं को बड़ा गर्व था, उन्हें वह महाप्राण तभी निगल चुका था, जब देवताओं ने उस पर प्रथम आक्रमण किया। वृत्र की अध्यक्षता में असुर स्वर्ग के उद्यानों का मनमाना उपभोग कर रहे थे।

'महर्षि दधीचि की अस्थि से विश्वकर्मा वज्र बनावें तो उस वज्र के द्वारा इन्द्र वृत्रासुर का वध कर सकेंगे।' जगत्पालनकर्ता भगवान विष्णु ने शरणागत देवताओं को एक उपाय बता दिया।

दधीचि की अस्थि—लेकिन महर्षि दधीचि जैसे महातापस के साथ बल-प्रयोग करने का संकल्प करने पर तो अमरों की अपनी अस्थियाँ भी कदाचित् भस्म हो जायें। दधीचि की शरण में आकर याचना करना ही एकमात्र उपाय था। समस्त देवता पहुँचे महर्षि के आश्रम में और उन्होंने याचना की—अस्थि की याचना!

'शरीर तो नश्वर है। वह एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। इस नश्वर शरीर के द्वारा किसी का कुछ उपकार हो जाय—यह तो सौभाग्य की बात है।' उस महा-तापस के मुख पर आनन्द उल्लसित हुआ, देवताओं की दारुण याचना सुनकर।

'मैं समाधि में स्थित होकर देहत्याग करता हूँ। आप लोग मेरी अस्थि लेकर अपना उद्देश्य सिद्ध करें।' महर्षि दधीचि आसन लगाकर बैठ गये। जैसे कोई सड़ा-पुराना वस्त्र शरीर से उतार फेंकें—योग के द्वारा देह त्याग दिया उन्होंने। जंगली पशुओं ने उनके निष्प्राण देह को चाटना प्रारम्भ किया। चर्म मांसादि को वे जंगली पशु चाट गये। अवशिष्ट गीली अस्थियों से विश्वकर्मा ने बनाया महेन्द्र का अमोघ अस्त्र वज्र।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008. OCTOBER 1996

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुरु योग-प्रशिक्षण केन्द्र सबाई (एत्माद्दपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री .....

.....

.....

.....

कृतं वाप्यथवाऽकृतम

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चापराह्निकम।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाप्यथवाऽकृतम॥

अर्थात्

जो कल करना है, उसे आज कर लो, जो मध्याह्न में करना है, उसे पूर्वाह्न (प्रातःकाल) में ही कर लेना चाहिए, क्योंकि मृत्यु किसी के किए और न किए (अर्थात् करने योग्य शेष रहे कार्य) की प्रतीक्षा नहीं करती। अर्थात् जो कुछ भी आत्म-कल्याण के लिए करना है, उसे जितना शीघ्र सम्भव हो, कर लेना चाहिए।

(कुलार्णव तन्त्र से साभार)

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय शर्मा द्वारा कमलेश प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र, सबाई (आगरा) से प्रकाशित। फोन : 330426